चन्दामामा
फरवरी १९६१

Photo by Ravinder Kumar Paul

पुरस्कृत

दुनिया मेरे लिए तमाशा !

प्रेषक :

जल्दी से
हम
घर चलें!
ज्यों ही स्कूल से छुट्टी मिलती है, त्यों
ही ये बच्चे सीधे अपने घरकी ओर दौड़ पड़ते हैं।
क्योंकि हमेशा उनके घर पर अपने अत्याधिक
मनपसंद साठे बिस्कुट व चॉकलेट उनके लिए तैयार
मिलते हैं। इन्हीं मनपसंद खाद्यों के कारण वे न
सिर्फ अपनी थकावट ही भूलते, बल्कि शाम में खेल
खेलने के लिए अपने में अधिक स्फूर्ति का
अनुभव भी करते हैं।
साठे
बिस्कुट एण्ड चॉकलेटस्
SATHES
CHOCOLATE
SATHES
CHOCOLATE
साठे बिस्कुट एण्ड चॉकलेट कं. लि., पूना-२

फरवरी १९६१

★

विषय - सूची

★

एक प्रति ५० नये पैसे वार्षिक चन्दा रु. ६-००

रेमी
स्नो और
पाउडर
Remy
Remy

नये वर्ष के दो नये उपहार!

'बाल लोक'

मास में दो बार छपनेवाली बच्चों की नयी अनूठी पत्रिका, जिसमें वह स्तंभ और विशेषताएँ हैं जो बच्चों की किसी अन्य पत्रिका में नहीं। वार्षिक ४)। २० न.पै. के टिकट भेजकर नमूना मंगवाए।

४) में २० पुस्तकें

मिठाईयों से भी अधिक मजेदार और चटपटी कहानियों की २० पुस्तकों का सैट वी. पी. द्वारा केवल चार रुपये में मंगाए। स्वयं पढ़े और अपने मित्रों को उपहार दें।

पता: प्रबंधक, 'बाल लोक' (सी) अम्बाला सिटी (पंजाब)

आधुनिक विज्ञान और लम्बे अर्से के अनुभव के संयोग से बननेवाला

भीनी-भीनी सुगंधवाला यह तेल बालों को काला और चमकीला बनाता है।

बहुत ही बारीक खोज-बीन, लम्बे अर्से के अनुभव और आधुनिक विज्ञान का सहारा ले कर लोमा केशतैल तैयार किया जाता है... और यही इसकी उत्तमता का रहस्य है।

सोल डीस्ट्रीब्युटर्स और एक्सपोर्टर्स:
एम. एम. खंभातवाला,
अहमदाबाद १.

प्रति सोमवार को रात के ८-३० बजे रेडियो सिलोन पर "लोमा संगीत खजाना" का कार्यक्रम सुनिए।

खिलौने! हर शुभ अवसर के लिए!!

"लॉक-ए-बॉब" का सेट:
चमकदार हरे, लाल, नीले और पीले रंग के "बॉब" यानी गोले! नर्म प्लास्टिक के बने हुए ये गोले साथ जुड़ भी जाते हैं और अलग-अलग भी किये जा सकते हैं। अटूट, हलके और धुलनेवाले इन गोलों से बच्चे, घंटों बिना किसी खतरे के खेल सकते हैं।

सैनिक का बक्तर:
हर बहादुर सैनिक के लिये बक्तर, जो उसे और निडर बना देता है! बच्चों के लिये बिना खतरे का खिलौना! चमकदार धात के रंग के, हल्के-फुल्के प्लास्टिक के बने हुए बक्तर, तलवार, ढाल और शानदार कलगीदार फौलादी टोपी!
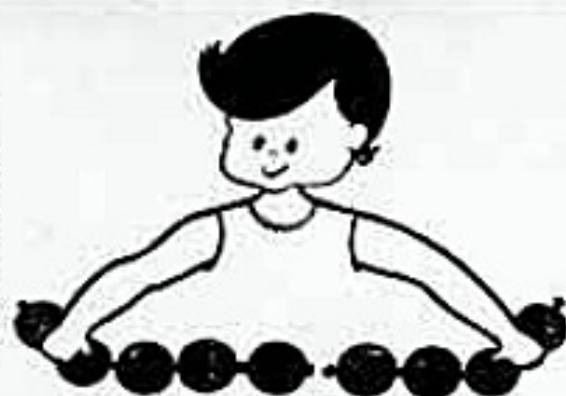
गुड़िया की देख-भाल का सेट:
हर बच्ची के लिये आकर्षक भेंट! इस सेट में दो बोतलें होती हैं—एक दूध के लिये और एक पानी के लिये। इनकी निपलें आसानी से निकाली जा सकती हैं। साथ ही अटूट प्लास्टिक की बनी हुई, गर्म पानी की थैली भी! छोटा सेट भी मिल सकता है, जिसमें दूध की बोतल और पानी की थैली होती है।

क्रिकेट गेंद और बल्ला:
प्लास्टिक का नया और निराला बैट (२३ इंच लंबाई) और बॉल! हल्के और धुलने वाले। भविष्य के हर टैस्ट क्रिकेटर के सपनों के खिलौने!

खिलौनों की हर दुकान पर मिलनेवाले **POLY-WARE** खिलौने

ग्राहकों को एक ज़रूरी सूचना

★

ग्राहकों को पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करना चाहिये। जिन पत्रों में ग्राहक-संख्या का उल्लेख न होगा, उन पर कोई ध्यान नहीं दिया जा सकेगा। पता बदल जाने पर तुरन्त नए पते की सूचना देनी चाहिए। यदि प्रति न मिले तो १० वीं तारीख से पहले ही सूचित कर देना चाहिए। बाद में आनेवाली शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाएगा।

व्यवस्थापक

“ चन्दामामा ”

आधुनिक यन्त्र
और कुशल
कार्य-कर्ताओं से
सुसज्जित,
सुव्यवस्थित
बृहत संस्था
PRASAD
PROCESS

न जाने
वे इसमें
क्या
डालते हैं!
यह इतना मधुर और मनपसंद है। सोचता हूँ कि चिल्लाने से तो मिल जायेगा। लेकिन जब माताजी मुझे खिलापिला कर इस की खुराक देती हैं तब मुझे फौरन नींद आ जाती है।
यह ग्राइप मिक्श्चर ... कितना मजेदार है, दिन भर तबीयत मस्त रहती है।
इस में कोई मादक चीज नहीं है और बिल्कुल निरापद है। बच्चों को मरोड़ अम्लता और वायु से आराम देता है।
बाल
शूलार्क
ग्राइप मिक्श्चर
इंडु
फार्मास्युटिकल
वर्क्स लि.
गोखले रोड साउथ, बम्बई

आप अपने गाँव में 'चन्दामामा' बिक्री की छोटी व्यवस्था कर सकते हैं। मनिआर्डर से रु. ३ भेजिये, आपको आठ प्रतियाँ मिलेंगी। शुरू में अगर चार ही प्रतियाँ काफी हों तो सिर्फ रु. १-५० भेजें, आपको एक प्रति पर १२ न. पै. के हिसाब से लाभ होगा। पर पैसे भेजने के पहिले यह तो निर्णय कर लीजिए कि आपके यहाँ अभी कोई एजंट नहीं है।

★

चन्दामामा पब्लिकेशन्स,
वड़पलनी :: मद्रास-२६

चन्दामामा

संचालक : चक्रपाणी

हम इस अंक में एक पद्य कथा प्रारम्भ कर रहे हैं। यह भी उसी श्रेणी की है, जिस श्रेणी में हमारी और पद्यकथायें थीं।

हमें आशा है कि "चन्दामामा" के पाठक इसे चाव से पढ़ेंगे।

हमने इस बार एक और कहानी किश्तों में देनी शुरु की है,—"लकड़ी का घोड़ा" इससे मिलती जुलती कथा "चन्दामामा" में पहिले छप चुकी है। पर यह पूर्णतः नयी है।

इस अंक में, आप मुखपृष्ट पर "शकुन्तला" नाटक की एक घटना चित्रित पायेंगे। महाभारत की घटनायें अन्तिम पृष्ट पर चित्रित होंगी।

वर्ष : १२ फ़रवरी १९६१ अंक : ६

पाण्डव योद्धा घटोत्कच के मरते ही कौरव सेना में उत्साह बढ़ गया। द्रोण और कर्ण जोर शोर से युद्ध करने लगे। पाण्डव योद्धा द्रोण को मारने के लिए एक साथ आगे बढ़े।

पर द्रोण ने असाधारण पराक्रम दिखाया। उसने विराट, द्रुपद, द्रुपद के तीनों लड़के, पाँचाल, मत्स्य और चेदि देश के वीरों को मार दिया। धृष्टद्युम्न ने शपथ की कि वह अवश्य अपने पिता के हत्यारे द्रोण को मारकर रहेगा।

तीसरे पहर रात को सैनिक थक थकाकर रथों में, घोड़ों पर, हाथियों पर, जिसको जहाँ जगह मिली, वहाँ वह सो गया। उनकी हालत देखकर अर्जुन चिल्लाया— "सैनिको, दो घड़ी बाद चन्द्रोदय होगा। तब तक युद्ध रोककर आराम करो।"

इसी तरह कौरव सेना ने भी चन्द्रोदय तक विश्राम किया। चन्द्रोदय के साथ युद्ध भी प्रारम्भ हुआ।

द्रोण बड़े भयंकर रूप से लड़ रहा था। उसने बीस हज़ार पाँचाल रथिकों, पाँच सौ मात्स्य, छः हज़ार संजय, हज़ारों हाथी और घोड़ों को मार दिया।

इस हत्याकाण्ड को देखकर कृष्ण ने पाण्डवों से कहा—"अगर तुमने जैसे भी हो इस द्रोण को न मार दिया, तो हम भी मरकर रहेंगे। अगर वह यह सुनेगा कि अश्वत्थामा मर गया है, तो वह हथियार डाल देगा।"

भीम द्रोण के पास जाकर चिल्लाया— "अश्वत्थामा मर गया है।" द्रोण का हृदय रुक-सा गया। परन्तु उसने भीम का विश्वास न किया।

आखिरी चित्र

उसने युधिष्ठिर से पूछा—"क्या यह सच है?" युधिष्ठिर यद्यपि असत्य न बोलना चाहता था, उसने औरों के अनुरोध पर कहा—"अश्वत्थामा का मरना सच है।" यह तो उसने ज़ोर से कहा और धीमे से बाद में कहा—"यह सच है कि अश्वत्थामा नाम का हाथी मर गया है।" सच कहा जाये तो उस नाम का हाथी पहिले मर चुका था।

द्रोण पगला-सा गया। इतने में धृष्टद्युम्न ने उस पर आक्रमण किया। द्रोण को कोई विशेष अस्त्र याद न आया। वह मामूली बाणों से ही युद्ध करने लगा।

आखिर भीम ने उसके पास जाकर कहा—"तुम तो जन्म से ब्राह्मण हो। और तुम्हारा पुत्र मरा पड़ा है। अब इस हत्याकाण्ड को समाप्त करो, तुम्हें लज्जा नहीं आती।"

यह सुन द्रोण ने शस्त्र छोड़ दिये। रथ में बैठकर योग समाधि में बैठ गया। उस समय धृष्टद्युम्न तलवार लेकर आया। एक हाथ से उसने द्रोण के सफेद केश पकड़े और दूसरे से उसने उसका गला काट दिया। "ऐसा न करो...." अर्जुन और सात्यकी चिल्लाते रहे। पर उसने परवाह न की।

इस तरह द्रोण पाँच दिन कौरव सेना का नेतृत्व करने के बाद धृष्टद्युम्न के हाथ मारा गया। अर्जुन और सात्यकी को तो इतना गुस्सा आया कि धृष्टद्युम्न को मारने तक उतारु हो गये। भीम और कृष्ण ने द्रोण की हत्या का समर्थन किया। कुछ भी हो, उनमें समझौता हो गया। द्रोण की मृत्यु के कारण जो क्षोभ कौरव सेना में देखा गया, उसका वर्णन करना असम्भव है। महारथी तक भीगी बिल्ली बनकर भाग गये।

इस तरह भय से भागती कौरव सेना के सामने अश्वत्थामा आया। पहिले तो वह कुछ न समझ सका। दुर्योधन के मुख से बात तक न निकली। कृपाचार्य ने उसको सारा वृतान्त सुनाया।

पिता की मृत्यु पर उसको अधिक शोक न हुआ। उसको यह बहुत बुरा लगा कि उतने बड़े योद्धा का, धृष्टद्युम्न ने केश पकड़कर, गला काट दिया था। यह उसके लिए बड़ा अपमानजनक था।

उस क्रोध में उसने पाण्डवों पर नारायणास्त्र का उपयोग किया। नारायणास्त्र भूमि पर खड़े हुए और युद्ध से भागनेवालों को न मारता था। जो किसी वाहन में होते, या युद्ध के लिए उद्यत होते, केवल उन्हीं को मारता। कृष्ण, अर्जुन और बाकी सैनिक रथ से उतरकर खड़े हो गये। उन्होंने खड़े होकर नारायणास्त्र को नमस्कार किया। केवल भीम ही मूर्खतावश रथ से न उतरा। उसे पाँच सात ने मिलकर जबर्दस्ती रथ से झट उतारा। नारायणास्त्र शान्त हो गया।

अश्वत्थामा बड़ा निराश हुआ कि उतना बड़ा अस्त्र बिना किसी की बलि लिये शान्त हो गया था। इतने में सूर्यास्त हो गया। पन्द्रहवें दिन का युद्ध समाप्त हुआ और दोनों पक्षवाले अपने शिविरों में चले गये।

उस दिन युद्ध में अर्जुन को एक विचित्र अनुभव हुआ। उसे लगा कि भाला हाथ में लिये कोई उसको सामने जाते हुए असंख्य सेना को मार रहा था, सब ने सोचा कि वह ही यह कर रहा था। व्यास द्वारा, अर्जुन को पता लगा कि इस तरह चलनेवाले साक्षात् शिव ही थे।

स्यमंतकमणि

प्रथम अध्याय

विनायक चतुर्थी की उस शुभ वेला में
द्वारकापुरी थी मस्त खुशियों में
गूँज थी आनंद की दसों दिशाओं में
कौन है ऐसा डूबे न जो खुशी में

आँगन में छिड़का था गंध
सुगंधि की बयार थी जहाँ-कहीं
थी सजावट अद्भुत अपूर्व
सज्जा थी यों रंग-बिरंगी

घर-घर की यह सज-धज
कस्तूरी-नीर का यह छिड़काव
तोरणों की वे सुंदर पंक्तियाँ
कितना सुंदर, कैसा मनमोहक

रमणियों का वह रमणीय झुँड
घर-घर की उनकी चहल-पहल
स्वागत के उनके वे मधुर वचन
लगते थे कितने मीठे कितने शीतल

आसीन थे विनायक चूहे पर
थे विराजमान घर-घर पर
समर्पित थे उन्हें लड्डू-मोदक
मोद प्रिय विनायक लगते थे सुन्दर

पूजित हुए वे रंग-बिरंगे फूलों से
फूल, फल, पत्ते सब थे रखे हुए
ढेर के ढेर थे पड़े हुए
पूजा थी यों सर्व-संपन्न

गणेश थे मुदित इन्हें पा
मोदक प्रिय थे दीखते आनंदमग्न
जान यह निवेदन हुआ भगवान से
पूर्ण हों अभिलाषाएँ, मिटें सभी विघ्न

नंद का था महल जगमगाता
बनी थी वह वैभव की निशानी
ऐश्वर्य का वह महा अट्टहास
देखती ही रही आँख फाड़े मही

लगता ऐसा पधारे हों गणेश स्वयं यहाँ
दर्शन करने उस परम पावन कृष्ण के
स्वीकारने उनके पूजोपहार
और देने आशीर्वाद उन्हें

ढेर के ढेर नारियल
घी के बनाये मोदक, केले
मक्खन, मलाई के भरकर घड़े
रखे गये विघ्नेश्वर के आगे

भांडार था उनके सामने सजा
थी पकवानें तरह-तरह की
देख इन्हें थे गणपति उल्लसित
मनाया त्योहार हर्ष से से इस वर्ष भी

गणपति बोले वचन आशीश के
कहा कृष्ण से 'बनोगे देव आठ देवियों के'
की प्रशंसा भरपूर रुक्मिणी की
बोले, 'हो तुम साक्षात् लक्ष्मी'

रुक्मिणी थी मुदित देख गणपति को
दे और मोदक उस विनायक को
बाँट उसने फल-फूल सब को
दिये साड़ी, चोली उन रमणियों को

दिया दान ब्राह्मणों को
श्रीकृष्ण ने दुधारू धेनुओं का
बाँटीं भेंट सबको अनेकानेक
सने मोद में सब कृष्ण से पा

परोसा रुक्मिणी ने अपने हाथों
रुचिकर पकवान, मोदक आदि जी भर
लगे लोग सब सराहने
खाया-पिया डटकर पेट भर

सुनते-सुनाते कहानियाँ गणेश की
बितायी दिन की वेला खुशी-खुशी
आयी संध्या लिये साथ चाँद
मिटा अंधेरा छिटकी चाँदनी

तारों की झुरमुट में
निकला अपनी आभा लिये चाँद
हटे लोग चाँद को आया देख
उचित था नहीं देखना चतुर्थी का चाँद

रंभा रही थीं गायें
दुहने की वेला हो आयी

बछड़ों को छोड़ स्वच्छंद
हुई इच्छा कृष्ण को दुहने की

सती रुक्मिणी ने दिया स्वर्ण-कलश
ले कृष्ण ने उसे अपने हाथों में
लगे दुहने गाय का दूध
मोद था फैला अंग-अंग में

दूध भरे उस स्वर्ण-कलश में
देखा कृष्ण ने रूप चाँद का
लगे पछताने 'देख लिया क्यों मैंने
लाँछन लगे क्या मुझ पर क्या पता'

नींद रही दूर रात भर
सोच रही यही क्या लगे लाँछन
प्राण जाए भले ही जाए
पर न जाने दे अभिमानी मान

उमड आएँ घटाएँ, चले आँधी
आये उफान उदधि में
सहूँ नहीं लाँछन किसी का
डटे रहूँ, पडे वे इसी सोच में

बीती रात, हुई प्रकट उषा
लगीं गायें रंभाने
बछडे थे आतुर छूटने
उत्सुक थे माताओं से मिलने

बाल रवि हुआ उदित पूर्व में
किरणें चुभ रहीं आँखों में बाणों-सी
जगी द्वारकापुरी, जगीं दिशाएँ
नगाडे, तुरही की ध्वनियों से

कृष्ण थे निद्रा की गोद में
लगी जगाने सुन्दरियाँ गा-गाकर
द्वारकापुरी थी अलसायी हुई
जगा रही तुरही बज-बजकर

निद्रामग्न कृष्ण सोये थे सजे पलंग पर
ले रहे झपकियाँ मीठी-मीठी
जगा सुन्दरियों ने उन्हें
गाये गीत मधुर-मधुर

जगे कृष्ण, जगा संसार
छूट निज आवश्यक कार्यों से
फिर हुए आसीन अपने
सुवर्ण सिंहासन पर

द्वितीय अध्याय

दौड़े आये ग्वाले बाल दस
दीखते थे बहुत भय-कम्पित
लटकाये कंबल कंधों पर
पहुँचे गोकुलेश्वर की सभा मध्य

'बोले, नंदनंदन! यादवेश्वर!
ब्रजकुलेश्वर! प्रणाम तुम्हें हमारे
आ रहे कोई इस तरफ
दीखते सूर्य अथवा इन्द्र से

चकाचौंध भर रहे आँखों में
दीप्ति है उनकी बंद करती पलकें
ज्ञात नहीं, पर दीखते अग्निदेव से
आ रहे इसी तरफ यहीं ॥

यों कह बैठे बाल जमकर
कहे जा रहे यही गाथा
कृष्ण थे गंभीर सोच में
होंगे कौन वे जो आ रहे

सत्रजित था खड़ा
सागर के किनारे
पूजा में था भूला
अपने को खड़ा-खड़ा

हुए व्यतीत दिन ग्यारह
हुए प्रकट भास्कर
पधारे मही पर
करने उसी का काम

किरणों का था फैला प्रकाश
दीखती थीं दिशाएँ स्वर्णमय
हटा परदे अंधेरे के
फैलती दीप्ति बढ़-बढ़कर

रथ था स्वर्ण का
जुते थे हरे घोड़े
हुए प्रकट सूर्यदेव
हुई आँखें चकाचौंध।

[१३]

[चित्रसेन ने राज्य में अराजकता फैलानेवाले डाकुओं और लुटेरों को बड़ी होशियारी से वश में किया। इस बीच कान्तिमति ने एक लड़के को जन्म दिया। उसकी पाँच वर्ष की आयु होते ही उग्राक्ष आया। चित्रसेन ने उसको एक लड़का दिया। उग्राक्ष जान गया कि वह लड़का राजकुमार न था।]

उग्राक्ष को किले के फाटक के पास आता देख अमरपाल ने चित्रसेन के पास भाग कर कहा—“महाराज, वह राक्षस चिल्लाता चिल्लाता इस तरह चला आ रहा है कि भूमि ही काँपती-सी लगती है।

चित्रसेन चकित रह गया। रानी कान्तिमति घबरा गई। चित्रसेन ने कहा—“यानि वह राक्षस जान गया है कि वह लड़का कौन है!”

“हम उसे धोखा नहीं दे सकते महाराज!” अमरपाल ने कहा।

“ऐसा ही मालूम होता है।” चित्रसेन ने कान्तिमति की ओर कुछ देर देखकर कहा—“हमारे शोक करने से कोई लाभ नहीं। जब मैंने उसे वचन दिया था, तब मैंने कल्पना न की थी कि परिस्थितियाँ यों बदलेंगी।”

“यदि हमने उसे मार दिया तो महाराज।” अमरपाल ने कहा।

"यह इतना आसान काम नहीं है! यदि हो भी गया, तो राज्य में अराजकता फैल जायेगी और बदनामी भी होगी कि मैं वचन देकर मुकर गया था।" चित्रसेन ने कहा।

रानी कान्तिमति ने झट उठकर कहा—"महाराज, उस राक्षस का मामला मुझे छोड़ दीजिये।" वह यों कह अपने कमरे में चली गई।

इतने में उग्राक्ष राजमहल के पास चिल्लाने लगा—"महाराज, महाराज।" उसका चिल्लाना सुन चित्रसेन और अमरपाल महल की सीढ़ियों से जल्दी नीचे उतरकर आये। चित्रसेन ने उग्राक्ष की ओर देखकर मुस्कराते हुए कहा—"क्यों, उग्राक्ष क्या हुआ? हम तुम्हारी ही बात कर रहे थे। क्या बात है!"

"धोखा हो गया महाराज, मैंने न सोचा था कि आप वचन देकर यों मुकरेंगे।" कहते हुए उग्राक्ष ने लड़के को कन्धे पर से उतार दिया।

"दासियों ने गलती कर दी है। उन्होंने जल्दी में राजकुमार न देकर, मन्त्री का लड़का तुम्हें दे दिया है।" अमरपाल ने कहा।

"यह मन्त्री का लड़का है....हा....हा....हो...." उग्राक्ष ने ज़ोर से अट्टहास किया। लड़के को दोनों हाथों से ऊपर उठाते हुए कहा—"यह रसोइये का लड़का है। मन्त्री का लड़का नहीं है। मुझे तो चाहिए चित्रसेन महाराजा का पहिला लड़का—उसके बदले यदि मुझे यह सारा राज्य भी दिया गया तो मैं न लूँगा।" उग्राक्ष ने कहा।

"ज़रा ठहरो, लड़के को अच्छे कपड़े पहिनाकर अभी लायेंगे।" चित्रसेन ने उग्राक्ष को समझाते हुए कहा।
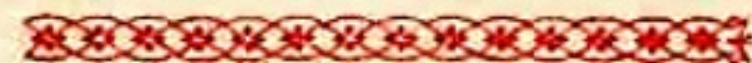
थोड़ी देर बाद दासियों ने रेशमी कपड़े पहिनाकर एक लड़के को लाकर उग्राक्ष के सामने खड़ा किया। उग्राक्ष ने लड़के और दासियों की ओर कई बार देखकर दासी से कहा—"अरे, तुमने जल्दी में राजकुमार के बदले किसी और लड़के को तो नहीं दे दिया है?"

"अगर तुम्हें इतना सन्देह है तो लड़के से ही पूछो।" दासियों ने कहा। इस बीच चित्रसेन वहाँ से चला गया। उग्राक्ष ने लड़के के पास जाकर, उसको उठाकर धीमे से पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"युवराज!" लड़के ने कहा।

दासियों ने ज़ोर से हँसते हुए कहा—"यह क्या प्रश्न कर रहे हो उग्राक्ष! तुम यदि पूछते कि किसके लड़के हो, तो सच मालूम हो जाता न?"

"अगर तुम धोखा ही देना चाहती हो तो तुमने उसे सिखा दिया होगा कि मुझ को कैसे उत्तर दिया जाय, इसलिए मैंने एक और प्रश्न पूछा। यह राजकुमार है कि नहीं, यह जानने के लिए, जंगल में एक और परीक्षा है अगर इस बार मालूम

हुआ कि तुमने मुझे धोखा दिया है, तो तुम सबको उठा ले जाऊँगा और तुम्हारी शादी मैं अपने सेवकों से कर दूँगा।" उग्राक्ष ने कहा।

उग्राक्ष की बातें सुनकर कुछ दासियाँ हँसीं। उग्राक्ष लड़के को कन्धे पर बिठाकर लम्बे-लम्बे डग भरता—किले का फाटक पार कर जंगल में चला गया।

थोड़ी दूर जंगल में जाने के बाद उग्राक्ष ने परीक्षा लेनी चाही कि लड़का राजकुमार था कि नहीं। उसे रास्ते में रसोइये के लड़के की छोड़ी हुई लकड़ी दिखाई दी।

छड़ी से उसके पैर तोड़ देगा।" लड़के ने कहा।

"अरे कुम्भकर्ण, यानि तुम राजा के गड़रिये के लड़के हो। इतना धोखा! इतना धोखा! गड़रिये के लड़के को राजकुमार बनाकर ये मुझे देते हैं! इन लोगों की इतनी हिम्मत?" कहते-कहते उग्राक्ष की आँखें लाल हो गईं। लड़के को कन्धे पर डाल गरजता वह कपिलपुर के किले की ओर चल पड़ा।

उग्राक्ष ने जंगल पारकर, किले के सामने के मैदान की ओर जो देखा, तो वहाँ कुछ घुड़सवार और सैनिक खड़े थे। उनके देखते ही उग्राक्ष ने सोचा—"इन सबको चित्रसेन ने मुझसे युद्ध करने के लिए तो नहीं भेजा है? पर ज्योंहि वह उनके पास पहुँचता गया, त्योंहि उसने राज सैनिकों के आगे अमरपाल को और उसके पास चम-चमाते रेशमी कपड़े पहिने पाँच वर्ष के एक लड़के को देखा—"यह शायद राजकुमार होगा।" उग्राक्ष ने सन्तुष्ट होकर सोचा।

उग्राक्ष अभी थोड़ी दूर था कि अमरपाल ने ज़ोर से चिल्लाकर कहा—"उग्राक्ष!

उग्राक्ष ने लड़के को कन्धे पर से उतार कर—लकड़ी उसके हाथ में देते हुए पूछा—"यदि यह लकड़ी तुम्हें दी गई, तो तुम क्या करोगे?"

"मैं क्या करूँगा, मैं अपने पिता को दूँगा।" लड़के ने कहा। उग्राक्ष चौका। उसे सन्देह हुआ कि उसे फिर धोखा दिया गया था।

"तुम्हारा पिता इस लकड़ी से क्या करेगा?" उग्राक्ष ने पूछा।

"अगर झुन्ड छोड़कर किसी भेड़ ने भागने की कोशिश की तो इस
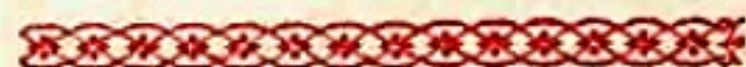
यह लो राजकुमार। दूसरी बार भी दासियों ने गलती कर दी।"

"क्या ये सब गल्तियाँ दासियों की हैं?" उग्राक्ष ने परिहास किया—"तो इस बार गलती से किसका लड़का देने जा रहे हो?" उसने पूछा।

"यह लड़का युवराज ही है। चित्रसेन महाराजा की पहिली सन्तान।" अमरपाल ने गुस्से में कहा।

उग्राक्ष ने उस लड़के को ध्यान से देखा और उसे निश्चय हो गया कि वह युवराज ही था—"मुझे इतना तंग किया, तकलीफ़ दी, अगर पहिली बार ही जो युवराजा को मुझे दे देते तो अच्छा होता न!" उग्राक्ष ने कहा।

"तुम राक्षस हो, तुम्हें नहीं मालूम माता का हृदय कैसा होता है। रानी मूर्छित हो गई। महाराज, दुःख के कारण अपने कमरे में हैं। उन्होंने बिना आगे पीछे देखे, जो वचन दिया था, उसके कारण कितने कष्ट और दुःख उनको झेलने पड़े, तुम नहीं जानते।" अमरपाल ने ज़ोर से कहा।

"हाँ....हाँ...." उग्राक्ष ने कहते-कहते राजकुमार को कन्धे पर बिठाकर कहा—"किसी दिन आकर महाराजा के दर्शन कर लूँगा।" वह फिर जंगल की ओर चल दिया।

"राजकुमार के भरण-पोषण का भार तुम पर है, देखना उसे किसी तरह का कष्ट न हो। खबरदार।" अमरपाल पीछे से चिल्लाया।

उग्राक्ष यह सुनकर, चलता-चलता रुका। पीछे मुड़कर उसने कहा—"आज से यह चित्रसेन महाराजा का लड़का नहीं है। मेरा लड़का है उग्रदत्त! जान लो।"

उग्राक्ष खुशी-खुशी जंगल में पगडंडियों से अपने किले की ओर जाने लगा। उसने कन्धे पर बैठे हुए राजकुमार से कहा—"बेटा, आज से तुम मेरे लड़के हो। तुम्हारा नाम उग्रदत्त है। यह जंगल सारा तेरा है। तुम्हारी सेवा के लिए तुम्हारी आज्ञा पर काम करनेवाले सैकड़ों सेवक हमारे किले में हैं।"

उग्राक्ष अपने किले के पास आया। किले के सामने राक्षस सपरिवार खड़े थे। उन्होंने उग्राक्ष और राजकुमार को देखकर जयजयकार किया।

उग्राक्ष ने अपने सेवकों को राजकुमार को दिखाते हुए कहा—"यह तुम्हारा होनेवाला नेता है। सरदार है। इसका नाम है उग्रदत्त।"

तुरत जयजयकार हुआ—"उग्रदत्त की जय!" उग्राक्ष किले में घुसा, वहाँ एक सजे-सजाये कमरे में उग्रदत्त को उतारते हुए उसने कहा—"उग्रदत्त! यह कमरा तुम्हारा है। तुम्हारे साथ खेलने के लिए तुम्हारी उम्र के ही दो बच्चों को बुलवाऊँगा।"

उग्राक्ष ने अपने सेवकों में से चार मुख्य सेवकों को बुलवाया। "तुम अभी जाकर उग्रदत्त की उम्रवाले लड़कों को पकड़ कर लाओ। यह किसी को मालूम न हो। चित्रसेन महाराजा को यह न पता लगे कि हम गाँवों पर हमला करके बच्चों को उठाकर ला रहे हैं।"

"तो यह काम रात को ही करना होगा।" एक सेवक ने कहा।

"अच्छा, मगर अन्धेरे में किसी अच्छे काने, लँगड़े लूले को पकड़कर लाये तो तुम्हारा चमड़ा उखड़वा दूँगा। जिन घरों से तुम बच्चे उठाकर लाओ, उन घरों में सोने की ये थैलियाँ छोड़ आना।" कहकर

उग्राक्ष ने अपने सेवकों को दो सोने की थैलियाँ दीं।

कुछ दिन बीत गये। एक दिन सवेरे उग्राक्ष किले के सामने के मैदान में उग्रदत्त के साथ खेल रहा था कि चार राक्षस गाते, सीटियाँ बजाते वहाँ भागे-भागे आये। उनके हाथों में उग्रदत्त की उम्र के ही दो लड़के थे।

उनको देखते ही उग्रदत्त खुशी में उछलने लगा। परन्तु वे दोनों लड़के डर से काँप रहे थे। उग्राक्ष ने उनकी ओर देखकर अपने सेवकों से कहा—"इनका लाना किसी को मालूम तो नहीं हुआ है?"

"सरदार, किसी को नहीं मालूम होने दिया है। इन दोनों को गाँव से बाहर तालाब के किनारे के झोंपड़ों से उठाकर लाये हैं। उस समय बड़े लोग वहाँ कोई न थे। आपके दिये हुए सोने के थैले वहाँ डाल आये हैं।"

इतने में नये पकड़े गये लड़के जोर जोर से रोने लगे। उनको देख उग्रदत्त भी ज़ोर से रोने लगा। अपने सेवकों से, जो तीनों को समझाने की कोशिश कर रहे थे उग्राक्ष ने कहा—"इन्हें बाग में ले जाकर खिलाओ। ये वहाँ शेर और भालू के बच्चों को देखकर रोना बन्द कर देंगे। ये तीनों जब तक बड़े नहीं हो जाते, इनके बारे में जंगल के किसी गाँव में कुछ नहीं मालूम हो।"

तुरत राक्षस सेवक किले के पिछवाड़े के बाग में तीनों बच्चों को ले गये। वहाँ शेर, भालू और क्रूर पशुओं के बच्चे पेड़ों के नीचे खेल रहे थे। उनको देखते ही उग्रदत्त और दोनों लड़कों ने रोना बन्द कर दिया। (अभी है)

विश्वासपात्र

विक्रमार्क ने अपना हठ न छोड़ा। पेड़ के पास जाकर, उस पर से शव उतार कर कन्धे पर डाल, हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित वेताल ने कहा—"राजा, विश्वासपात्र, स्वामीभक्त नौकर अपने स्वामी के लिए हर तरह की मुसीबतें झेलते हैं। पर वीरवर जैसे कम ही हैं, जो अपने परिवार का भी बलिदान स्वामी के लिए अक्सर कर देते हैं। परन्तु तुम जैसे राजा को एक याचक की इच्छा पूरी करने के लिए इतने कष्ट उठाता कभी नहीं देखा है। न सुना ही है। ताकि तुम्हें थकान न मालूम हो, मैं उस वीरवर की कहानी सुनाता हूँ। ध्यान से सुनो।" उसने यों कहानी सुनानी शुरु की।

एक ज़माना था, जब शोभावती नगर पर शूद्रक नाम का महाराजा राज्य करता

था। वह धर्म और शौर्य प्रिय था। उसका राज्य साक्षात् राम-राज्य था। जनता को कोई कष्ट न था।

मालवदेश से वीरवर नाम का एक ब्राह्मण आया। उसने शूद्रक महाराजा से आश्रय-आजीविका माँगी। उस ब्राह्मण के हाथ में तलवार, ढाल, कटार देखकर राजा ने सोचा कि वह कोई महाशूर था। "क्या वेतन चाहते हो?" राजा ने उससे पूछा।

"मुझे रोज पाँच सौ दीनार दिलवाइये।" वीरवर ने कहा। यद्यपि यह वेतन बहुत बड़ा था, फिर भी राजा ने उसको अपनी नौकरी में रख लिया।

परन्तु राजा को एक सन्देह हुआ। यह ब्राह्मण रोज पाँच सौ दीनारें लेकर करेगा क्या? यह जानने के लिए उसने अपने गुप्तचरों को नियुक्त किया।

उन्होंने वीरवर की दिनचर्या के बारे में मालूम करके बताया। रोज सवेरे वह राजमहल में आता, तलवार हाथ में लेकर—दोपहर अपना वेतन लेकर घर चला जाता।

घर के खर्च के लिए पत्नी को सौ दीनारें देता। सौ दीनारें कपड़े और साज-शृंगार पर खर्चता, एक सौ दीनारें पूजा पर लगाता। बाकी दो सौ दीनारें, ब्राह्मण और गरीबों में बांट देता। वीरवर को कोई व्यसन न था। उसके परिवार में सिवाय, उसकी पत्नी, एक लड़की और एक लड़के के कोई न था।

यह जानकर, राजा सन्तुष्ट हुआ कि जो वेतन वह वीरवर को दे रहा था, उसका सदुपयोग हो रहा था।

परन्तु राजा ने यह जानना चाहा कि वीरवर नौकरी कैसे कर रहा था।

रात-भर वीरवर महल के मुख्य द्वार पर तलवार लेकर खड़ा रहता। अगर रात को कोई उठकर पूछता—"कौन है मुख्य द्वार पर?" तो उत्तर सुनाई देता—"मैं हूँ, महाराज, वीरवर।"

चाहे गरमी हो या बरसात, गाज गिरे या तूफ़ान उमड़े, वीरवर मुख्य द्वार पर मूर्ति की तरह खड़ा रहता।

राजा यह देख बड़ा खुश हुआ कि यह वीरवर सचमुच बड़ा कार्यपरायण था, उसके रहते मेरी सेवा में कोई कमी न होगी। उसने सोचा।

एक दिन रात को लगातार वर्षा हो रही थी। क्योंकि तारे नहीं दिखाई दे रहे थे इसलिए सर्वत्र घना अन्धेरा था। महल की दूसरी मंजिल पर खड़े राजा को किसी स्त्री के रोने की ध्वनि सुनाई दी। राजा को यह न गंवारा था कि उसके राज्य में कोई दुःखी हो, त्रस्त हो। इसलिए वह चिल्लाया—"कौन है ड्योढ़ी पर?"

"मैं हूँ महाराज, वीरवर" जवाब मिला।

"देखो वीरवर, कोई स्त्री रो रही मालूम होती है। पता लगाओ, उसको क्या कष्ट है।"

"अच्छा हुजूर!" वीरवर यह कहता उस दिशा की ओर चला, जहाँ से रोना सुनाई पड़ रहा था, यह देखने के लिए कि वह क्या करता है, राजा भी उसके पीछे पीछे चला। वीरवर यह न जानता था। वह अन्धेरे में चलता, नगर से बाहर के एक तालाब के पास पहुँचा। उस तालाब के बीचोंबीच एक स्त्री खड़ी रो रही थी। वीरवर ने उससे पूछा—"तुम कौन हो? क्यों यों रो रहे हो?"

"मैं भूदेवी हूँ। तीन दिन में इस राज्य का उत्तम राजा शूद्रक महाराजा मर

मैं अपने प्राण भी अर्पित कर दूँगा। सन्देह न करो। बताओ।" वीरवर ने कहा।

"राजमहल के पास जो चण्डिका का मन्दिर है, उसमें तुमने यदि अपने लड़के को बलि चढ़ा दिया, तो राजा सौ साल और जीयेगा।" उस स्त्री ने कहा।

"यह काम मैं अभी किये देता हूँ।" कहकर वीरवर चल पड़ा। तालाब में खड़ी स्त्री अन्तर्धान हो गई।

राजा को, जो यह सब देख रहा था, बड़ा आश्चर्य हुआ। यह देखने के लिए कि क्या होता है, वह वीरवर के साथ फिर निकल पड़ा।

वीरवर सीधे अपने घर गया। जो कुछ हुआ था, उसने पत्नी को बताया। पत्नी ने उससे कहा—"राजा के लिए हमें इतना करना ही होगा। लड़के को उठाकर उससे भी यह कहिये।"

वीरवर ने अपने सोते हुए लड़के को उठाया—"बेटा, यदि तुम को चण्डिका देवी पर चढ़ा दिया गया, तो राजा जीवित रह सकेंगे, नहीं तो आज से तीन दिन बाद वे मर जायेंगे।"

जायेगा। उसके बाद मुझे उन जैसा भर्ता न मिलेगा। इसलिए रो रही हूँ।" उस स्त्री ने कहा।

वीरवर का दिल थम-सा गया। यह जानकर कि वह राजा, जो उसका पालन पोषण कर रहा था, मर जायेगा उसने चिन्तित हो पूछा—"क्या राजा को मृत्यु से बचाने का कोई उपाय है? अगर हो तो बताओ।"

"है, पर मुझे सन्देह है कि वह तुम कर पाओगे कि नहीं?" उस स्त्री ने कहा।

"मैं उस महाराज का नमक खा रहा हूँ। उनके लिए यदि आवश्यकता हुई, तो

"तो चलिये, चण्डिका के मन्दिर में चलें। हमारे लिए राजा का ऋण चुका देना का यह अच्छा मौका है।" लड़के ने पिता से कहा।

वीरवर पत्नी को साथ लेकर, लड़के और लड़की को दोनों कन्धों पर बिठाकर चण्डिका के मन्दिर की ओर गया। राजा भी छुपा छुपा उनके पीछे गया।

मन्दिर के अन्दर वीरवर ने चण्डिका को नमस्कार करके कहा—"माँ मेरे लड़के की बलि लेकर हमारे शूद्रक महाराजा को पूर्ण आयु प्रदान करो।" यह कहकर उसने लड़के का सिर काट दिया। वीरवर की लड़की छोटी थी। वह अपने भाई का सिर गोदी में रखकर रोती रोती मर गई।

वीरवर से उसकी पत्नी ने कहा—"जी, चिता बनवाइये, उसमें मैं भी अपने बच्चों के साथ राख हो जाऊँगी। राजा का काम हो ही गया है। दोनों बच्चों को खोकर, मैं जीकर क्या करूँगी!"

वीरवर इसके लिए भी मान गया। उसने चिता बनाई और मन्दिर के दीये से उसमें आग लगा दी। उसकी पत्नी अपने दोनों बच्चों को लेकर उसमें भस्म हो गई!

इस वीरवर ने बिना किसी को कुछ कहे, या दिखाये अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया।

राजा ने चण्डिका के पास जाकर कहा—"देवी, यदि तुम में शक्ति है तो मुझे बलि ले लो और मेरे लिए बलि हुए वीरवर के परिवार को पुनर्जीवित करो। मुझ अकेले के लिए इतने प्राणों का लेना अन्याय है।" उसने तल्वार लेकर अपना सिर काटना चाहा।

इतने में आकाशवाणी हुई—"बेटा, ठहरो। वीरवर के परिवार को मैं जिलाऊँगी।" तुरत वीरवर, उसकी पत्नी, लड़के और लड़की जीवित हो उठे। राजा एक तरफ़ हटा और अपने महल की ओर चला गया।

वीरवर को यह सब एक सपने की तरह लगा। उसने अपनी पत्नी और बच्चों को देखकर कहा—"यह क्या? तुम सब क्या चिता में जलकर भस्म नहीं हो गये थे? मैंने गला काट लिया था, पर मैं भी ज़िन्दा हूँ। यह सब अवश्य देवी की ही कृपा है।"

इसके बाद वीरवर ने अपने कुटुम्ब को घर पहुँचाया और फिर स्वयं वह राजमहल में चला गया। राजा ने उसका आना

फिर वीरवर ने चण्डिका देवी के सम्मुख उसका स्तोत्र पढ़ा। और कहा—"अब तक जिस पत्नी और बच्चों के लिए जीवित रहा था, वे नहीं रहे। जिस राजा का मैंने नमक खाया था, उसका मैंने उपकार कर दिया है। अब मुझे जीने की इच्छा नहीं है। मुझे भी बलि ले लो।" कहकर उसने अपना सिर काट दिया।

राजा को यह सब देख बड़ा आश्चर्य हुआ। राजा के लिए, जो कोई जो कुछ बलिदान या त्याग करता है, वह यह औरों को प्रदर्शित करके, करता है। परन्तु

महल में से देखा और इस तरह चिल्लाया जैसे कुछ जानता ही न हो, "कौन है, ड्योढ़ी पर!"

"मैं हूँ महाराज, वीरवर मैं आपकी आज्ञा के अनुसार उस स्त्री को खोजता गया। शायद कोई राक्षसी थी, दीखी भी और गायब हो गई।"

इतना तो कहा, पर उसने यह न बताया कि राजा की दीर्घायु के लिए उसने अपने सारे परिवार का बलिदान कर दिया था। राजा ने भी न बताया कि उसने वीरवर के मृत परिवार को पुनर्जीवित करवाया था। इसके बाद राजा ने वीरवर को लाट राज्य और कर्नाटक राज्य देकर अपने समान पद और प्रतिष्ठा दी।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा—"राजा, इन सब में कौन बड़ा है? वीरवर या उसकी पत्नी, या उसका लड़का, या उसकी लड़की, या शूद्रक महाराजा? अगर तुमने जान बूझकर उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर टुकड़े टुकड़े हो जायेगा!"

विक्रमार्क ने कहा—"शूद्रक महाराज बड़ा है। वीरवर ने अपने लड़के को बलि देकर काफ़ी स्वामीपरायणता दिखाई थी, पर उसने अपना धर्म ही निभाया था। उसकी पत्नी पति के क़दमों पर चली। यह भी उसका धर्म था। इसी तरह वीरवर के लड़के का राजा के लिए अपने प्राण दे देना सहज धर्म था। परन्तु राजा का अपने सेवक के लिए अपने प्राण दे देने के लिए तैयार हो जाना केवल धर्म प्रेरित नहीं था। इसलिए राजा औरों से अधिक श्रेष्ठ है।"

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और वृक्ष पर जा बैठा। (कल्पित)

तिम्मरसु की बुद्धिमत्ता

कृष्णदेवराय का नाम तो सभी जानते होंगे—इसके कारण ही विजयनगर साम्राज्य को असाधारण कीर्ति मिली थी।

जब उसका पिता, साल्व नरसिंहराय गद्दी पर था, तो उसका प्रधानमन्त्री यकायक मर गया। नरसिंहराय ने घोषणा की कि यदि कोई बुद्धिमान व्यक्ति मिला, तो उसको वह मन्त्री नियुक्त कर देगा।

कितने ही इस पद के लिए आये। पर उनकी बुद्धिमत्ता पर नरसिंहराय बिल्कुल सन्तुष्ट न हुआ। उनमें से कोई भी उसे न जँचा।

आखिर नरसिंहराय ने एक उपाय सोचा। उसने कागज़ पर स्याही से चार अंगुल ऊँची एक लकीर खींची और उसे अपने नौकरों को देकर कहा—"जो इस लकीर को बिना मिटाये छोटा कर दे, उसको मेरे पास ले आओ।"

नौकर उस कागज़ को लेकर, जगह जगह गये। अगर कोई कुछ बुद्धिमान-सा लगता तो उसको वह कागज़ दिखाकर कहते—"क्या, आप इसे बिना मिटाये, इस लकीर को छोटा कर सकते हैं! कर सकते हैं तो कीजिये।"

कई ने कहा—"यह कैसे सम्भव है!" कई ने कहा—"क्या तुम्हारी अक्ल मारी गई है! लकीर को बिना मिटाये इसको कैसे छोटा किया जा सकता है!" कई ने गुस्से में पूछा—"क्या तुम्हें मुझे देखकर मज़ाक सूझ रहा है!"

नौकर घूमते-घूमते ब्राह्मणों के एक गाँव में पहुँचे, वहाँ के लोगों से भी यही पूछा। उस गाँव में उनको एक पाठशाला दिखाई दी। एक उपाध्याय बच्चों को कुछ पढ़ा रहा था।

रामचन्द्रराय

नौकरों ने उपाध्याय के पास जाकर पूछा—"आप इस कागज़ पर जो लकीर देख रहे हैं, क्या उसको बिना मिटाये, छोटा कर सकते हैं ?"

उपाध्याय ने उनकी बात सुनकर कहा—"मैं तो क्या, यह कोई भी नहीं कर सकता है ! किसी जादूगर से पूछकर देखिये।" नौकर पीछे हटे।

उस पाठशाला में सोलह वर्ष का एक लड़का पढ़ रहा था। उसका नाम था तिम्मरसु। उसने उपाध्याय से कहा—"गुरुजी, जो वह पूछ रहे हैं, वह कोई ब्रह्म विद्या तो नहीं है ! उस लकीर की बगल में यदि उससे बड़ी लकीर खींच दी जाये, तो क्या वह अपने आप छोटी नहीं हो जायेगी ?"

अध्यापक को यह बात समझ में आई। उसने जाते हुये नौकरों को बुलाकर कहा, "ज़रा, वह कागज तो दो।" फिर उसने चार अंगुल की लकीर की बगल में उससे बड़ी लकीर खींचकर कहा—"तुम्हारी लकीर छोटी हो गई है। ठीक है न ! अब तुम जाओ।"

तुरत उन नौकरों ने आनन्द से उनको नमस्कार किया। "हमें साल्व नरसिंहराय ने भेजा है। इस कागज को हमें देकर उन्होंने कहा था कि जो कोई इस लकीर को छोटी कर दे हम उसको साथ लायें। कई ने यह कागज देखा, पर इसको कोई भी छोटा न कर पाया। हम भी इस ख्याल में थे कि आप भी न कर पाये थे। परन्तु आपके कारण ही हमारा काम हो गया। आपके लिये पालकी लायेंगे। आप राजधानी आने के लिए तैयार रहिये।" वे उनसे बिदा लेकर चले गये।

उपाध्याय खुशी से फूला न समाता था। उसने तिम्मरसु से कहा—"अरे, लगता है हमें राजा कोई बड़ा-सा उपहार दे रहे हैं। वस्तुतः यह उपहार तुम्हें मिलना चाहिये था, पर इस बार मुझे लेने दो। समझ लेना कि तुम्हारी यही गुरु दक्षिणा है। तुम छोटे हो, बुद्धिमान हो। भविष्य में कितने ही और उपहार तुम्हें मिलेंगे। यह भेद किसी को न बताना।"

तिम्मरसु ने हँसकर कहा—"आप भी क्यों इतना कह रहे हैं? आप ही ने तो उस लकीर को छोटा किया था। मैंने नहीं।"

उपाध्याय यह जान सन्तुष्ट हुआ। उसने गाँव में सब से कहा कि राजा उसका सम्मान करने जा रहा था, वह राजा की भेजी हुई पाल्की पर चढ़कर राजधानी चला गया।

जब दूतों ने बताया कि उस पाठशाला के उपाध्याय ने कैसे लकीर छोटी की थी तो नरसिंहराय बड़ा खुश हुआ। परन्तु वह उपाध्याय जो देखने में भोंदू लगता था, बुद्धिमान था, उसको विश्वास नहीं हुआ इसलिए उसने उपाध्याय की एक और परीक्षा ली।

दरबार में एक वेदिका पर कई मुद्रिकायें रखी गईं। उस वेदिका के चारों ओर गद्दे रखे गये। राजा ने उपाध्याय को दरबार में बुलाया।

"शायद अभी तक आप यह न जान सके कि इस कागज़ पर लकीर छोटी करने के लिए क्यों कहा था? मुझे मन्त्री की आवश्यकता थी, मैंने घोषणा की थी, जो इस परीक्षा में सफल होगा, उसको मन्त्री बनाऊँगा। आपके पद से सम्बन्धित मुद्रिकायें इस वेदिका पर हैं। जाकर ले आईये। मगर उन गद्दों पर होकर न जाइये।"

वह उपाध्याय तो यह सोचकर आया था, कि उसको कोई ईनाम मिलेगा। जब उसको मालूम हुआ कि उसको मन्त्री पद दिया जा रहा था, तो वह काँपने लगा। पसीने पसीने हो गया। उसे यह न पता लगा कि बिना गद्दों को पार किये कैसे वह वेदिका तक जाये। यह सोच कि उसका भरे दरबार में अपमान होने जा रहा था उसे काठ मार गया।

नरसिंहराय का सन्देह पक्का हो गया। उसने उपाध्याय से कहा—"अरे यूँ ही खड़े क्यों हो? क्या तुम मुद्रिकायें नहीं ले सकते? यह बताओ कि तुमने ही वह लकीर छोटी की थी, या किसी और ने। सच कहो।"

उपाध्याय ने झट राजा के पैरों पर पड़कर कहा—"महाप्रभु! माफ़ कीजिये। लोभ के कारण मैंने यह अनुचित कार्य किया। मुझे मेरे एक विद्यार्थी तिम्मरसु ने इस लकीर को छोटा करने का तरीका बताया था। मैं नहीं कर सका था।" उसने सच सच कह दिया।

तुरत नरसिंहराय ने उस गाँव एक और पालकी भेजकर, तिम्मरसु को बुलवाया। राजा ने उससे कहा—"मेरी खींची हुई लकीर को छोटा करने का तरीका तुमने ही बताया था! मैं तुम्हें मन्त्री पद पर नियुक्त करता हूँ। देखो उस वेदिका पर मुद्रिकायें रखी हैं, जाकर ले लो। मगर गद्दों पर पैर न रखना।"

तिम्मरसु गद्दों को लपेटता गया और वेदिका के पास जाकर मुद्रिका ले आया। नरसिंहराय ने उसकी बुद्धिमत्ता पर सन्तुष्ट होकर उसको मन्त्री पद पर नियुक्त किया।

झगड़े का न्याय

एक बार दो बूढ़े किसान अपने गाँव से थोड़ा शहद लेकर शहर गये। उसे वहाँ उन्होंने बेचा। रात को वे एक सराय में ठहर गये। सोने से पहिले उन्हें एक सन्देह हुआ। अगर चान्दी की मुहरें किसी ने चुरालीं तो?"

"हाँ, सराय में कब क्या हो, किसको मालूम है? इसलिए हम एक काम करें। हम अपनी मुहरें उस टोकरे में रख दें जिनमें हम शहद के पात्र लाये थे। अगर कोई चोर हमारे कमरे में आया भी तो उसे सपने में भी न ख्याल होगा कि मुहरें हमने टोकरी में रखी हैं।" एक बूढ़े ने कहा।

दूसरे बूढ़े ने कहा कि ऐसा करना ही अच्छा था। दोनों ने एक मोमबत्ती जलाई। शहद बेचकर जो चान्दी की मुहरें पाई थीं, उसे टोकरे की तह में रखकर, फिर रोशनी बुझाकर वे निश्चिन्त हो आराम से सो गये।

परन्तु दीवारों के भी कान होते हैं। दरवाज़े के कुंडे के भी आँखें होती हैं। जब वे दोनों बूढ़े सोने जा रहे थे, तो सराय के मालिक और उसकी पत्नी ने यह सब देखा। जब दोनों बूढ़े गाढ़ निद्रा में थे, तो वे कमरे के अन्दर गये और टोकरी में रखा धन ले गये।

सवेरे जब बूढ़े उठे और उन्होंने टोकरे में देखा, तो वहाँ क्या था! चान्दी कोई चुरा ही ले गया था। दोनों कुछ देर सिर पीटते रहे।

इतने में उन्हें असलियत मालूम हुई। सराय के बाहर का फाटक अभी न खुला था, उस दिन रात को सराय में और

रामभाऊ

कोई ठहरा न था, उस हालत में, सराय के मालिक ने ही यह चान्दी चुराई होगी। नहीं तो उसकी पत्नी ने। दोनों बूढ़े बहुत सोचने के बाद इस निश्चय पर पहुँचे।

बूढ़ों ने सीधे सराय के मालिक के पास जाकर पूछा—"कल किसने हमारी चान्दी की मुहरें चुराई थीं?"

यह सुनते ही सराय का मालिक और उसकी पत्नी ने भी इस तरह दिखाया जैसे कि वे बहुत चकित हों, कहा—"अरे अरे, यह क्या हो गया! मुहरों का चला जाना, शायद आपके लिए कुछ भी न हो, पर सराय की कितनी बदनामी है! अगर यह बदनामी फैली तो इसका अन्त तो होगा नहीं। इसलिए पता लगाना ही होगा। चलो, न्यायाधिकारी के पास चलें।" उन्होंने कहा।

फिर क्या था! चारों मिल कर न्यायाधिकारी के पास गये। न्यायाधिकारी दोनों की बात सुनकर कोई फैसला नहीं कर पाया।

उस नगर में फान चियान्गशान नाम का एक मेधावी था। न्यायाधिकारी ने उसे बुलाकर कहा—"इन चारों ने एक फरियाद की है। देखो, उनकी बात सुनकर सच मालूम कर पाते हो कि नहीं!"

पहिले बूढ़ों ने बताया कि कैसे उनकी मुहरें चोरी गई थीं। फिर सराय के मालिक और उसकी पत्नी ने अपना बयान दिया। "इनकी बातों पर कैसे विश्वास किया जाय? और तो कोई आया नहीं। अगर इन बूढ़ों ने चोरी का दोष हम पर थोपा तो आप सोचिये हमारी कितनी बदनामी होगी। उनका तो नुक्सान हुआ है, मगर उससे कहीं अधिक नुक्सान हमारा होगा।"

दोनों की बात सुनकर फान चियान्गशान ने कहा—"सच मालूम करना तो मेरे लिए भी सम्भव नहीं जान पड़ता ! यह हमारे बड़े मन्दिर का नगाड़ा ही कर सकता है।"

न्यायाधिकारी ने चकित होकर कहा—"जो फैसला मैं न दे सका, क्या वह नगाड़ा देगा ?"

"जी, वह बड़ा महिमावाला नगाड़ा है। जो फरियाद करते हैं, उनको उसे न्यायस्थल तक लाना होता है। अगर उनकी फरियाद ठीक होती है, तो नगाड़ा स्वयं बज उठता है। अगर ठीक नहीं है तो वह नहीं बजता।" फान चियान्गशान ने धीमे धीमे कहा।

न्यायाधिकारी को यह सब अविश्वासीय और विचित्र-सा लगा। परन्तु जिसने ये बातें कही थीं, वह बड़ा प्रखर बुद्धिवाला समझा जाता था। इसलिए न्यायाधिकारी ने कहा—"अच्छा, जिनका धन चोरी गया है वे नये कपड़े पहिनकर मन्दिर में जायें और वहाँ का नगाड़ा यहाँ तक उठाकर लायें। देखें क्या होता है ! तभी फैसला दिया जा सकता है।"

अगले दिन बूढ़े नये कपड़े पहिनकर मन्दिर में गये। नगाड़े को एक बाँस में लटकाया। दोनों उसका एक छोर पकड़कर, न्यायस्थान की ओर चले। नगाड़ा बहुत भारी था। बूढ़े कुछ दूर गये और थककर उन्होंने नगाड़ा नीचे उतार दिया।

उनमें से एक ने कहा—"अरे ये धन गया तो गया कितनी आफ़त आ पड़ी है। अगर हम जो कह रहे हैं, वह सच भी हो तो यह नगाड़ा स्वयं बज उठेगा। यह सोचना तो बेकार है। यह न बजेगा न हमारा धन हमें मिलेगा।"

बूढ़ा अभी कह ही रहा था कि नगाड़ा स्वयं बजा। बूढ़े के जान में जान आई। वे फिर नगाड़ा मन्दिर में उठा ले गये। उसको यथास्थान रखकर वे न्यायस्थान वापिस आये।

"यह दिखाने के लिए कि बूढ़ों के धन का चोरी जाना सच था, नगाड़ा स्वयं बजा। अब यह दिखाने के लिए तुमने वह धन नहीं लिया है। कल तुम पति पत्नी नये कपड़े पहिनकर नगाड़ा ढोकर लाओ।" न्यायाधिकारी ने सराय के मालिक से कहा।

सराय का मालिक और उसकी पत्नी अगले दिन नगाड़ा उठाकर निकले, उन्हें भी वह भारी लगा। उन्होंने भी रास्ते में नगाड़ा उतारा।

"उस धन को चुराकर हमने कितनी बड़ी गल्ती की। चोरी करने के लिए उस दिन कोई और भी सराय में न था।" सराय के मालिक की पत्नी ने कहा।

"जो हुआ सो हुआ, जब बात इतनी दूर आ गई है, तो चोरी किया धन कैसे दे सकते हैं। यह नगाड़ा हमारे लिए तो बजेगा नहीं! न मालूम क्या हो!" सराय के मालिक ने कहा।

उस समय नगाड़ा का ऊपरला भाग खुला। उसमें से फान चिचान्गशान ने बाहर आते हुए कहा—"अगर यह बात तुम न्यायाधिकारी के सामने मान जाते, तो यह सब तकलीफ़ नहीं न उठानी पड़ती! समझे।"

"भाई, भाई हम उन बूढ़ों का धन वापिस दे देंगे। हमारी नाक रखो।" सराय का मालिक और उसकी पत्नी उसके पैरों पड़े।

बूढ़ों को जब उनका धन वापिस मिल गया, तो वे सराय के मालिक और उसकी पत्नी को माफ़ करके अपने गाँव चले गये।

हस्तिनापुर का राजा दुष्यन्त एक दिन वन में शिकार के लिए गया। एक हरिण का पीछा करता वह अपने रथ में मुनियों के आश्रम में पहुँचा। वह हरिण को अपने बाण से मारने ही वाला था कि—"ठहरो ठहरो, आश्रम के हरिण को न मारो।" कहता वैखानस अपने शिष्यों के साथ सामने आया। उसने दुष्यन्त को आशीर्वाद दिया—"तुम्हारे एक ऐसा लड़का होगा, जो सम्राट होगा।" उसने यह भी बताया। समीप ही नदी के किनारे कण्व महामुनि का आश्रम है। महामुनि सोम तीर्थ गये हुए हैं। यदि तुम वहाँ गये, तो उनकी लड़की, शकुन्तला तुम्हारा आतिथ्य करेगी।"

दुष्यन्त आश्रम से कुछ दूर ही रथ से उतर गया। अपने राजोचित चिन्ह, धनुष बाण उसने रथ में ही छोड़ दिये। "मेरे वापिस आने से पहिले घोड़ों को धोओ।" सारथी से कहकर वह आश्रम में घुसा।

आश्रम में शकुन्तला, अनसूया, प्रियंवदा, नाम की मुनि कन्यायें पौधों को पानी दे रही थीं। उनकी मीठी मीठी बातें सुनता राजा एक पेड़ के नीचे बैठ गया। इतने में शकुन्तला के मुँह पर भौंरें मँड़राने लगे। वह चिलाई...."भौंरे....बचाओ।"

"तुम्हें बचाने की हमें क्या पड़ी है, सब को बचाने की जिम्मेवारी राजा दुष्यन्त पर जो है! उन्हें बुलाओ...." सहेलियाँ हँसी।

तुरत राजा ने कहा—"पुरुवंश के राजा, दुष्यन्त के होते तुम्हारा कौन क्या बिगाड़ सकता है!" वह उनके पास गया। मुनि कन्यायें उसको देखकर चकित

रह गई। राजा ने उनसे पूछा—"क्या इस आश्रम में तपस्या निर्विघ्न चल रही है?" क्योंकि उनका सत्कार करना उनका कर्तव्य था, इसलिए अनुसूया ने केले के पेड़ों के नीचे के चबूतरे पर उससे आराम करने के लिए कहा।

"तुम भी पौधों को पानी देते देते थक गयी होगी, हमारे साथ विश्राम लो।" राजा ने कहा। सब के बैठने के बाद उसने अनुसूया और प्रियंवदा से बातचीत करके शकुन्तला के जन्म के विषय में सब वृत्तान्त मालूम कर लिया। विश्वामित्र कठिन तपस्या कर रहा था। उसकी तपस्या भंग करने के लिए देवताओं ने मेनका को भेजा। वह अपने काम में सफल हुई। विश्वामित्र के मेनका से शकुन्तला पैदा हुई। कण्व ने उसे पाला पोसा। उपयुक्त वर मिलने पर वह उसका विवाह करने की सोच रहा था।

इस तरह बातें चल रही थीं और शकुन्तला और दुष्यन्त एक दूसरे को प्रेम करने लगे थे। इतने में आश्रम के बाहर हो हल्ला सुनाई दिया। दुष्यन्त का रथ देखकर कोई जंगली हाथी बिदक उठा था। यह शोर सुनते ही मुनि कन्यायें उठकर राजा से विदा लेकर आश्रम में चली गईं। दुष्यन्त भी आश्रम से चला गया। इतने में उसके कर्मचारी भी उससे आ मिले थे।

दुष्यन्त ने शकुन्तला के बारे में अपने विदूषक मूढव्य से कहा—"मैं उसे देखना चाहता हूँ। हम किस बहाने आश्रम में घुस सकते हैं?" उसकी सलाह माँगी। सौभाग्यवश आश्रम से दो मुनि बालकों ने आकर कहा—"महाराज! आश्रमवासियों ने हमें आपको आश्रम में कुछ दिन रहने के लिए निमन्त्रित करने को कहा है।

क्योंकि कण्व महामुनि नहीं हैं, इसलिए राक्षस हमारी तपस्या भंग कर रहे हैं।"

दुष्यन्त को लगा, जैसे ऐन मौके पर उसका भाग्य उसकी मदद कर रहा हो। वह अपने रथ में आश्रम गया। दुष्यन्त के धनुष की ध्वनि सुनते ही राक्षस भाग गये। दुष्यन्त भी जान गया कि उसकी तरह शकुन्तला भी प्रेम से व्यथित थी। उसने शकुन्तला से चुपचाप विवाह कर लेना चाहा—परन्तु शकुन्तला ने कहा कि उसे पिता की अनुमति लेनी होगी।

"तुम क्षत्रिय कन्या हो। गान्धर्व विवाह तुम्हारे लिए अनुचित नहीं है।" दुष्यन्त ने उससे कहा। दोनों का गान्धर्व विवाह हो भी गया। यज्ञ भी समाप्त हो गया। दुष्यन्त ने शकुन्तला को अंगूठी देते हुए कहा—"इस अंगूठी पर जितने अक्षर हैं, उतने दिनों में मैं तुम्हें अपने घर बुला लूँगा।" उसने वचन दिया।

शकुन्तला की सहेलियों ने राजा से कहा—"राजा, आपकी बहुत-सी पत्नियाँ हैं। आप हमारी सहेली को प्रेम से देखियेगा।"

"कितनी भी पत्नियाँ हों, पर तुम्हारी सहेली मेरी मुख्य रानी है।" कहकर दुष्यन्त चला गया। इसके बाद कण्व के आश्रम में दुर्वासा आया। शकुन्तला दुष्यन्त के बारे में सोच रही थी, अतिथि के आगमन का उसे पता न लगा। यह देख दुर्वासा क्रुद्ध हुआ, उसने शाप दिया—"जाओ, तुम्हारे पति तुम्हें न पहिचानें।"

अनसूया और प्रियंवदा ने, जो फूल तोड़कर आ रही थीं, क्रुद्ध अतिथि को देखा। पहिचाना कि वह दुर्वासा ऋषि था। उससे शकुन्तला की गल्ती भी मालूम हो गई। प्रियंवदा ने उसके पैरों पर पड़कर कहा—"जाइये मत, क्रुद्ध न होइये।" दुर्वासा

रहने के लिए तो नहीं माना। पर उसने कहा कि दुष्यन्त जब शकुन्तला को दी हुई अपनी अंगूठी देख लेगा तब शाप निष्प्रभाव हो जायेगा।" क्योंकि यह अंगूठी शकुन्तला की अंगुली में ही थी इसलिए उन्होंने सोचा कि शाप का कोई भय न था।

दिन बीत रहे थे। दुष्यन्त ने शकुन्तला को नहीं बुलवा भेजा। शाप के कारण वह शकुन्तला की बात ही भूल गया। शकुन्तला गर्भिणी भी थी। कण्व के वापिस आने पर कैसे बताया जाय कि शकुन्तला का गान्धर्व विवाह हो गया था और गर्भिणी थी—यही चिन्ता प्रियंवदा और अनुसूया के मन में थी।

कण्व को दिव्यवाणी द्वारा मालूम हो गया था कि दुष्यन्त और शकुन्तला का विवाह हो गया था और शकुन्तला के गर्भ में ऐसा बाल था, जो सम्राट होनेवाला था। आश्रम में आते ही उसने शकुन्तला को आशीर्वाद दिया और उसको पति के पास भेजने की व्यवस्था की।

शकुन्तला के जाते समय सबकी आँखों में तरी थी। कण्व ने उसे बताया कि

कैसे उसे ससुराल में रहना था। अनुसूया और प्रियंवदा ने शकुन्तला को दुर्वासा के शाप के बारे में बताया ही नहीं। वे हमेशा उससे कहती—"यदि तुम्हें वे भूल जायें, तो उनको अपनी अंगूठी दिखाना।"

"न मालूम मैं फिर कब आश्रम आ पाऊँगी।" शकुन्तला ने कहा।

"बेटी, जब तुम्हारा लड़का बड़ा हो जाये और उसका पट्टाभिषेक हो जाये, तब तुम और तुम्हारा पति तपस्या करने आना।" कण्व मुनि ने कहा।

शकुन्तला को कुछ दूर पहुँचाकर—आश्रमवासी पीछे हटे। गौतमी नाम की तपस्विनी और कण्व के शिष्य शकुन्तला को लेकर हस्तिना नगर पहुँचे। दुष्यन्त से नौकरों ने कहा—"आपके दर्शन के लिए कण्व महामुनि के आश्रम से कुछ मुनि और स्त्रियाँ आई हुई हैं।" उनका सत्कार करने राजा ने अपना पुरोहित भेजा। अभ्यागतों से मिलने वह अग्नि होत्र गृह में गया।

थोड़ी देर में शकुन्तला को लेकर गौतमी और मुनि आये। शकुन्तला के

मुँह पर परदा था। मुनियों से पूछा—"क्या तपस्या ठीक चल रही है? कण्व महामुनि कुशल हैं न?"

मुनियों ने कुशल समाचार देने के बाद राजा से कहा—"बिना किसी के जाने आपने कण्व महामुनि की पुत्री शकुन्तला से विवाह किया था, वह गर्भिणी है। यह सोच कि विवाहित स्त्रियों का पति के पास रहना ही उत्तम है, इसे कण्व महामुनि ने आपके पास भेजा है, आप गृहस्थी निभाइये।"

शाप के कारण दुष्यन्त सब भूल चुका था। उसने कहा—"क्या कह रहे हैं आप? आपकी बातें विचित्र प्रतीत होती हैं।" शकुन्तला ने परदा हटाया, तब भी दुष्यन्त उसको न पहिचान सका। उसने कई बातें बताईं पर कोई फायदा नहीं हुआ। उसने अंगूठी उतार कर दिखानी चाही, पर अंगूठी न थी। वह रास्ते में शक्रावतार तीर्थ के पास पानी में गिर गई थी।

दुष्यन्त ने सोचा कि दाल में कुछ काला था। मुनियों ने सोचा कि जान-बूझकर धोखा देकर वह शकुन्तला का जीवन नष्ट कर रहा था। वे शकुन्तला को छोड़कर चल दिये। शकुन्तला उनके पीछे चली पर वे उसे समझाकर चले गये।

राज-पुरोहित राजा की अनुमति लेकर प्रसव तक शकुन्तला को अपने घर में रखने की सोच रहा था कि मार्ग में कोई स्त्री की-सी आकृति प्रकाशित हुई और वह शकुन्तला को उठाकर ले गई। यह सुन दुष्यन्त को तनिक भी दुःख न हुआ।

एक दिन एक मछवे ने शक्रावतार तीर्थ में एक लाल मछली पकड़ी। जब उसने उसको काटा, तो उसको एक अंगूठी मिली। वह उसे शहर में बेच रहा था कि वह राज-सैनिकों द्वारा पकड़ा गया। कुछ

भी हो, अंगूठी दुष्यन्त के पास पहुँची। दुर्वासा का शाप खतम हो गया, जो कुछ बीता था, वह सब दुष्यन्त को स्मरण हो आया। वह शकुन्तला को याद कर रोने लगा। उसने आज्ञा दी कि उसके राज्य में किसी विनोद की व्यवस्था न की जाय।

कुछ समय बीता। राक्षसों से युद्ध करने के लिए इन्द्र ने दुष्यन्त की सहायता चाही। उसको बुलाने के लिए उसने मातली को रथ में भेजा।

दुष्यन्त रथ में गया। राक्षसों को युद्ध में जीतकर आ रहा था कि उसको रास्ते में हेमकूट पर्वत दिखाई दिया। मातली ने बताया कि वहाँ मारीच महामुनि का आश्रम था। वह वहाँ उतरा।

आश्रम में घुसते ही उसे एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया। एक बालक एक शेर के बच्चे को, जो अपनी माँ का दूध पी रहा था, उठा लाया—"अरे, उसे छोड़ दो। उसे तंग नहीं करो।" आश्रम की स्त्रियाँ कह रही थीं। पर बालक ने उनकी एक न सुनी।

स्त्रियों ने दुष्यन्त को देखकर उससे कहा कि वह बच्चे से शेर का बच्चा छुड़वा दे। फिर यह देख कि उसके हाथ पर तावीज न था, वे उसे खोजने लगे। "यह लो" दुष्यन्त ने नीचे गिरी तावीज उठाकर दी। "नहीं नहीं" स्त्रियाँ आश्चर्य में चिल्लाईं। क्योंकि जब वह तावीज मारीच मुनि ने उसके हाथ में बाँधा था, तब कहा था कि यदि सिवाय माँ बाप के किसी और ने उसे छुआ, तो वह साँप होकर उसे काटेगा। ऐसा कई बार हुआ भी था।

यह सुनकर दुष्यन्त जान गया कि वह उसका लड़का था और शकुन्तला उसी आश्रम में थी।

इस बीच आश्रम स्त्रियों ने जाकर शकुन्तला को सारा वृत्तान्त बताया।

जब से उसे अप्सरायें वहाँ उठा लाई थीं और आश्रम में छोड़ गई थीं, उसे उनके द्वारा मालूम हो गया था कि दुष्यन्त को अंगूठी मिल गई थी और उसे याद करता दुष्यन्त बड़ा दुखी था और उसने सब विनोद और मनोरंजन भी बन्द कर दिये थे। वह झट उठकर दुष्यन्त के पास गई, दुष्यन्त उसे देख बड़ा लज्जित हुआ। उसने उससे क्षमा माँगी। शकुन्तला ने कहा कि गल्ती उसकी न थी, उसी का भाग्य ही अच्छा न था इसलिए ऐसा हुआ था। शाप के बारे में दोनों ही न जानते थे। यह भी उन्होंने थोड़ी देर बाद मारीची महामुनि द्वारा जान लिया।

फिर दुष्यन्त अपनी पत्नी शकुन्तला और अपने लड़के को, जो सर्वदमन नाम से बड़ा हो रहा था अपने साथ अपने देश ले गया। वह सर्वदमन ही बाद में भरत सम्राट बना। उसी ने ही अमर ख्याति पायी।

कमजोर पहलवान

एक जगह एक बड़ा मशहूर पहलवान था। उसे अपने बल का बड़ा अभिमान था। उसने अपने बल और कीर्ति के अनुरूप शेर के चित्र को अपनी दोनों भुजाओं पर गुदवाना चाहा।

उसने एक नाई के पास जाकर कहा—"क्या मेरे हाथ पर शेर का चित्र खोद दोगे? मैं सिंह नक्षत्र में पैदा हुआ था। मुझ में ताकत भी शेर की सी है।"

नाई मान गया। उसने सूई लेकर पहलवान के हाथ में घुसेड़ी।

पहलवान को बड़ा दर्द हुआ। अभी नाई ने दो तीन बार ही सूई लगाई थी कि उसने खिझकर दर्द में पूछा—"ठहरो ठहरो, क्या खोद रहे हो?"

"शेर की पूँछ खोद रहा हूँ।" नाई ने कहा।

"अरे वाह, बड़े लोग अपने पालतू कुत्तों और घोड़ों की पूँछें काट देते हैं, मालूम है? पूँछ कटा शेर औरों से अधिक बहादुर होता है। इसलिए पूँछ छोड़ दो, बाकी शेर बनाओ।" पहलवान ने हाथ मसलते हुए कहा।

नाई मान गया फिर वह सूई घुसेड़ने लगा।

"अब क्या खोद रहे हो?" पहलवान ने पूछा।

वह सूई का दर्द न सह पा रहा था।

"शेर के कान बना रहा हूँ।" नाई ने कहा।

"अरे वाह, जानते हो, कुत्तों को पालनेवाले क्या करते हैं? उनके कान काट देते हैं। बड़े कानवाले कुत्तों को कोई नहीं पालता? शेरों में भी बिना कान

के शेर अच्छे समझे जाते हैं। अरे तुमको इतना भी नहीं मालूम।

"अच्छा तो बिना कान के शेर को ही बनाऊँगा।" नाई ने अपना काम जारी रखा। जब जब नाई सूई उसके हाथ पर रखता, उसकी जान चली जाती। वह चीख भी न पाता।

"ठहरो तो, अब क्या खोद रहे हो!" पहलवान ने पूछा।

"शेर की कमर...." नाई ने कहा।

"वाह....लगता है, तुमने काव्य भी नहीं पढ़े हैं! कवियों ने कहा है कि शेर की कमर ही नहीं होती है। अगर हो भी तो ऐसा लगता है कि नहीं है। सुन्दर स्त्रियों के कमर की तुलना शेर की कमर से की जाती है। तुम तो यह भी नहीं जानते। इसलिए ही स्त्री को सिंहेन्द्र मध्यम कहा जाता है। तुम शेर की कमर न बनाओ। तब तुम्हारा चित्र और भी अच्छा बनेगा। मैं इस ख्याल में रहा कि तुम यह सब जानते होगे।" पहलवान ने उपदेश-सा दे दिया।

नाई ने सोचा कि इतने बड़े पहलवान में इतनी शक्ति न थी कि चुपचाप हाथ पर शेर का चित्र गुदवा ले। उसने सूई और रंग को एक तरफ़ रखकर कहा—"आप न चित्र बनवाइये मैं भी सूई नहीं चुभाऊँगा। मुझे तंग न कीजिए, आप अपने रास्ते जाओ। मुझे बहुत काम है।"

यह सुन पहल्वान का निराश होना तो अलग, वह बड़ा खुश हुआ। "अगर तुम यह काम नहीं जानते थे तो पहिले ही जो बता देते।"

मूँछें मरोड़ता वह घर की ओर चला! शुरु शुरु का जोश कुछ ऐसा ही होता है।

हमारे देश में बहुत सी वीर स्त्रियाँ पैदा हुईं। ऐसी स्त्रियाँ भी बहुत हैं, जिन्होंने देश के लिए प्राण त्याग दिये, युद्ध में पराक्रम दिखाया और बड़ी कुशलता से राज्य भी किया। इनमें से एक काकतीय रुद्रमदेवी भी है।

जिन्होंने दक्षिण में साम्राज्य की स्थापना की है, उनमें काकतीय भी हैं। काकतीय साम्राज्य में जनता सुखी थी। कला, संस्कृति आदि भी उन्नत थीं।

काकतीय राजाओं में गणपति देव नाम का एक राजा था। इसके एक ही लड़की थी। उसका नाम था रुद्रम्मा। क्योंकि पिता के बाद गद्दी पर उसे बैठना था, इसलिए छुटपन में ही उसने तलवार चलाना, घुड़सवारी, युद्ध कला, राज्य शासन पद्धति आदि सीखीं।

रुद्रम्मा की माँ का नाम नारम्मा था। उसकी एक ही लड़की थी और उस लड़की का ललित कलाएँ आदि न सीखकर इस तरह पुरुषों की तरह युद्ध विद्या सीखना उसे पसन्द न था। उसने अपने पति गणपति देव से भी यह कई बार कहा। परन्तु गणपति देव ने कोई जवाब न दिया। वह केवल मुस्करा दिया।

रुद्रम्मा का यह रुख उसकी सहेलियों को भी न भाया। उनका ख्याल था कि रुद्रम देवी का मामूली राजकुमारियों की तरह रहना, अच्छे गहने वगैरह पहिनना, लाड़ प्यार से बड़ा होना और सयानी होते ही उपयुक्त वर से विवाह करना और माँ बनना, अच्छा था। इसलिए उसका रुख बदलने के लिए सबने मिलकर एक बात सोची। एक दिन जब वह बाग में बैठी थी, सहेलियों

ने एक के बाद एक आकर कहा—"युवराज की जय, युवराज की जय...."

यह सुन रुद्रम्मा घबरायेगी, उन्होंने सोचा, परन्तु वह हिली भी नहीं।

रुद्रम्मा ने उनकी ओर गम्भीरतापूर्वक देखकर कहा—"युवराजा से तुम क्या चाहती हो!"

सहेलियों को न सूझा कि क्या कहे, वे एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

"क्यों हिचक रही हो? तुम्हारी क्या इच्छा है, बताओ। मैं उन्हें पूरा करने के लिए तैयार हूँ।" रुद्रम्मा ने कहा।

सहेलियों ने भी सोचा कि अपनी मनोकामनाओं को पूरा करने का भी यही अच्छा मौका था। उन्होंने रुद्रम्मा से कहा—"हमें कुछ और नहीं चाहिए। यह काफ़ी है, यदि आप वचन दें कि आप हथियार नहीं पकड़ेंगी।"

रुद्रम्मा यह सुन क्रुद्ध हुई। क्योंकि उसको उनका यह हठ न पसन्द था कि वह अस्त्र-विद्या का अभ्यास न करे। उसके पिता को उसका अस्त्र-विद्या का अभ्यास करना बहुत पसन्द था। इसलिए वह अभ्यास न छोड़ना चाहती थी। परन्तु

क्योंकि उसने वचन दिया था कि जो कुछ सहेलियाँ माँगेंगी, वह देगी इसलिए उसने कहा—"तुम्हारे कहे अनुसार मैं अस्त्र छोड़ दूँगी। परन्तु एक शर्त है वह यह कि कोई मुझे अस्त्र-विद्या में हरा दे, उसके बाद मैं हथियार नहीं पकड़ूँगी।"

उसकी सहेलियाँ यह सुन बड़ी खुश हुईं। उन्होंने यह शुभ वार्ता रुद्रम्मा की माँ नारम्मा को भी बतायी। सहेलियों की तरह माँ ने भी सोचा कि उसकी माँ अस्त्र-विद्या में आसानी से हार जायेगी। उन्होंने मन्त्री को बुलाकर कहा—"किसी एक ऐसे आदमी को बुलाओ, जो तलवार चलाने में मेरी लड़की को हरा सके।"

मन्त्री ने हँसकर कहा—"मुझे नहीं मालूम कि युवरानी को तलवार चलाने में कोई हरा भी सकता है।"

नारम्मा ने चकित होकर पूछा—"आप भी क्या कह रहे हैं? कैसे यह विश्वास किया जाय कि इस देश में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो कल परसों की इस लड़की को हरा सके?"

"मैं सच कह रहा हूँ। हमारे सेनापति का लड़का, तलवार चलाने में बहुत तेज़

है। उसने कितनों को ही हराया है। चाहें तो आप उसको युवरानी से लड़ने के लिए कहिये।" मन्त्री ने कहा।

अगले दिन रुद्रम्मा और सेनापति के लड़के की तलवार चलाने में प्रतियोगिता करने की व्यवस्था की गई। जब यह प्रतियोगिता हो रही थी, तब रानी नारम्मा और मन्त्री भी उपस्थित थे।

प्रतियोगिता अधिक देर न चली। थोड़ी देर में ही रुद्रम्मा ने अपने प्रतिद्वन्द्वी को निरायुध कर दिया। वह विजयी हुई।

रानी चकित हो गई। परन्तु उसका उससे अस्त्र-विद्या का अभ्यास बन्द करवाने का हठ और भी बढ़ गया। उसने गणपति देव की अनुमति पर देश-विदेश में एक घोषणा करवा दी। घोषणा यह थी कि जो कोई रुद्रम्मा को अस्त्र-विद्या में पराजित कर देगा उसको सेनापति के पद पर नियुक्त किया जायेगा।

यह घोषणा सुन रुद्रम्मा को हराने बहुत से योद्धा और राजकुमार आये। परन्तु उनमें से कोई भी उसे न हरा सका। इसलिए रुद्रम्मा ने अस्त्रों का परित्याग भी न किया।

गणपति की तरह रुद्रम देवी के भी लड़कियाँ ही हुईं। इसलिए उसने अपनी लड़की के लड़के प्रतापरुद्र को पाला-पोसा। गणपति देव के बाद रुद्रम देवी ने काकतीय साम्राज्य पर बहुत दिन शासन किया।

जब वह राज्य कर रही थी, तो प्रतापरुद्र युवराज के रूप में, राज्य भार में हिस्सा बँटाया करता।

रुद्रम देवी शासन में बहुत समर्थ थी। उसका काल, काकतीय साम्राज्य का सुवर्ण काल समझा जाता है।
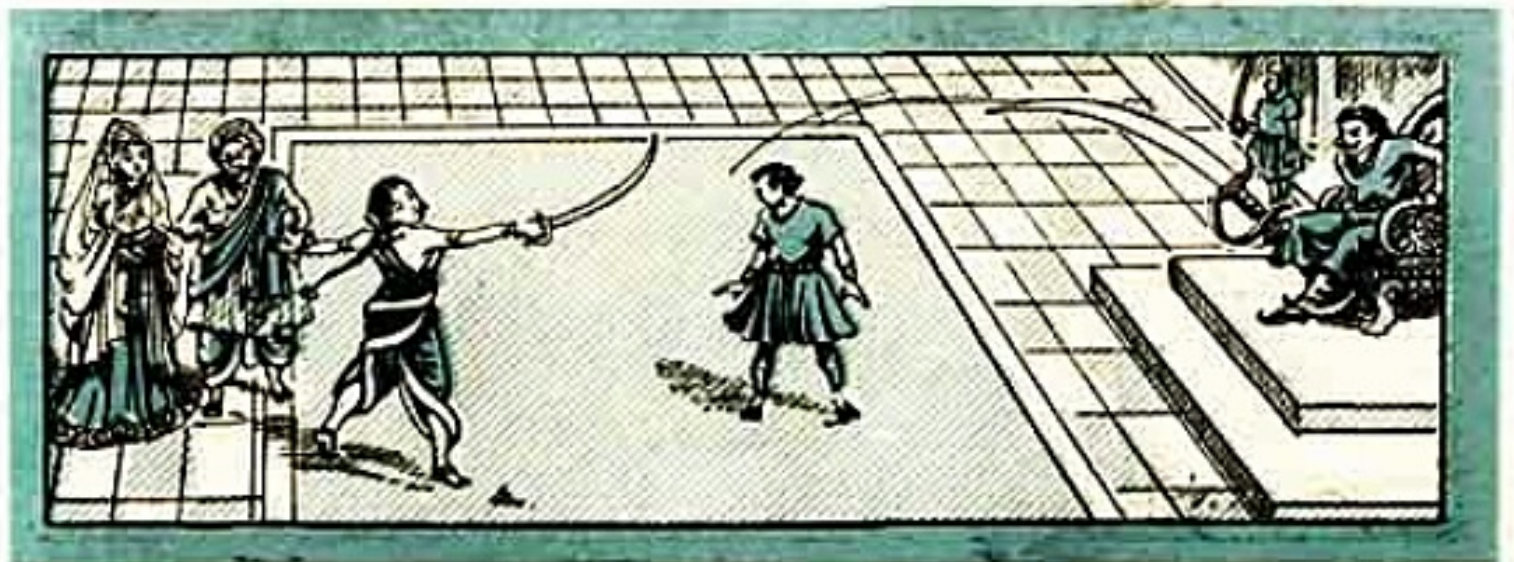
मेरा पिता कहीं चला गया है ?

अपने पिता से कहकर क्यों नहीं समाचार पत्रों में विज्ञापन देते ?

"कोई फायदा नहीं। हमारी जानकी को अखबार पढ़ना नहीं आता है।"

अगर तुम मुख यों जोर से मींचे रहे तो बताओ कैसे काम चलेगा ? प्यारे, सुनो भी ज़िद न करो, ज़रा आ तो कर। डाक्टर साहब अंगुली हटा लेंगे।

वह दान्त नहीं, आपने तो कोई और दान्त निकाल दिया है ?

अरे आप घबराते क्यों है ? ठहरिये, ठहरिये, उस दान्त को भी निकाले देता हूँ। इसमें क्या बड़ी बात है ?

"खैर गिरे तो गिरे, किस्मतवाले हो डाक्टर के घर के सामने गिरे। वरना जाने क्या होता?" "अरे, मैं ही तो डाक्टर हूँ।"

एस. शंकरनारायण, मद्रास

बुलुक

एक जंगल में एक पोखर के पास जंगली बिल्लियाँ पत्तियाँ खा रही थीं कि पास के पेड़ से एक फल गिरा और "बुलुक" की ध्वनि हुई।

"बाप रे बाप बुलुक" कहती हुई बिल्लियाँ इधर उधर फुदकती फुदकती भाग गईं।

उन्हें एक लोमड़ी मिली—"क्यों यों भाग रही हो?" उसने चिन्तित हो पूछा।

"बुलुक आ रहा है, तुम भी भागो।" बिल्लियों ने कहा। लोमड़ी भी उनके साथ भागने लगी।

थोड़ी देर में हरिण, गैंडे, चीते, भेड़िये, सभी पशु भागने लगे।

उनको शेर मिला—"क्यों यों तुम सब भागे जा रहे हो?" उसने कुतूहलवश कुछ क्रोधवश पूछा।

"बुलुक आ रहा है।" जन्तुओं ने कहा।

"उसकी खबर मैं लूँगा। दिखाओ वह बुलुक कहाँ है?" शेर ने कहा। बिल्लियाँ राह दिखातीं शेर को पोखर के पास ले गईं, ठीक उसी समय एक और फल पोखर में गिरा और फिर "बुलुक" ध्वनि हुई।

"वह रहा तुम्हारा बुलुक, जाकर अपना काम देखो।" शेर ने कहा।

लकड़ी का घोड़ा

एक बढ़ई और लुहार में बहस हुई। "मैं तुमसे अधिक हुनर जानता हूँ।" बढ़ई ने कहा। "अरे वाह, मैं तुमसे अधिक जानता हूँ।" लुहार ने कहा।

दोनों में काफ़ी देर तक तू तू मैं मैं होती रही, पर वे यह न तय कर सके कि उनमें कौन अधिक हुनर जानता था। इसलिए उन्होंने राजा से फैसला करवाना चाहा कि उनमें कौन अधिक चतुर था।

राजा ने उन दोनों को देखकर पूछा—"तुम किस काम पर आये हो?"

बढ़ई ने यों कहा—"हुज़ूर मैं बढ़ई हूँ। मैंने अपनी कारीगरी से बहुत चित्र-विचित्र वस्तुयें बनाई हैं। परन्तु यह लुहार ज़िद कर रहा है कि वह मुझ से अधिक जानता है।"

"जिस किसी ने मेरा हुनर देखा है, उसने मुझे खूब सराहा है। फिर भी यह बढ़ई कहता है कि वह मुझ से अधिक जानता है।" लुहार ने कहा।

"महाराज! आप ही फैसला करें कि हम में से अधिक कौन जानता है।" दोनों ने राजा से निवेदन किया। राजा को न सूझा कि कैसे फैसला किया जाय।

"हमने तुम दोनों की कारीगरी नहीं देखी है। उस हालत में हम कैसे कह सकते हैं कि कौन तुम दोनों में चतुर है। तुम दोनों जाकर दस दिन में कोई अच्छी

चीज़ बनाकर लाओ। तुम दोनों की बनाई हुई चीज़ें देखकर बताऊँगा कि तुम में कौन अच्छा कारीगर है।" उसने कहा।

बढ़ई और लुहार राजा से विदा लेकर अपने अपने घर गये। उन दोनों ने काम शुरु कर दिया। दस दिन में लुहार ने एक लोहे की मछली बनाकर राजा को दी।

"यह किस काम में आयेगा?" राजा ने पूछा।
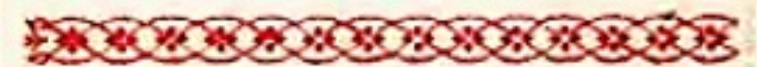
"आप इस मछली पर चाहे लाख बोरे धान के डालिये, पर यह समुद्र में डूबेगा नहीं, तैरता रहेगा।" लुहार ने कहा।

यह सुन राजा हँसा। उसने सोचा कि लुहार एकदम मुर्ख और नासमझ था और यूँही शेखियाँ मार रहा था। उसने अपने आदमियों से कहा—"इस मछली को समुद्र में ले जाकर छोड़ दो और इस पर लाख बोरे धान लादो, देखो कि यह डूबती है कि नहीं?"

सेवकों ने जाकर समुद्र में मछली छोड़ दी और उस पर लाख बोरे धान भी लाद दिया। परन्तु वह मछली समुद्र में तैरती रही।

राजा ने उस लुहार की बड़ी प्रशंसा की और उसको नगर में एक गली का मुखिया बना दिया।

इस बीच बढ़ई, लकड़ी का एक घोड़ा तैयार करके लाया। उसे देखते ही राजा बड़ा निराश-सा हुआ।

"यह क्या, तुम बच्चों के खेलने के लिए खिलौना बनाकर लाये हो?"

क्या तुम यह बनाकर लुहार की मछली से मुकाबला करना चाहते हो?" राजा ने बढ़ई से पूछा।

"महाराज! दोनों की क्या तुलना है? इसके सामने वह लोहे की मछली किस काम की? ये जो पंक्ति में बीस कीलें हैं। उन पर ज़रा ध्यान दीजिये। इसमें से अगर पहिली ढ़ीली की गई तो घोड़ा आकाश में उड़ने लगेगा। उसके बाद एक एक को ढ़ीला करते जायेंगे, तो घोड़े की रफ्तार तेज़ होती जायेगी। अगर सब कीलें ढ़ीली कर दी गईं तो यह वायु वेग से भागेगा। इस पर जो सवार होंगे वे आकाश में तो उड़ेंगे ही, साथ साथ सारे संसार की सैर भी कर सकेंगे।" बढ़ई ने कहा।

बढ़ई यह कह ही रहा था कि राजा का सब से छोटा लड़का वहाँ आया। यह पता लगते ही कि वह घोड़ा उड़ता था, उसे बड़ा जोश आया। उसने सोचा आकाश से भूमि देखने में कितना मजा आयेगा। उसने पिता से उस घोड़े पर सवारी करने की अनुमति माँगी।

"अरे वाह, अभी तो यह ही नहीं मालूम हुआ है कि यह घोड़ा उड़ता है कि नहीं? अगर मान लें कि यह उड़ भी गया और अगर नीचे नहीं उतरा तो...." राजा ने अपने लड़के को समझाया।

पर बढ़ई ने इस बीच कहा—"महाराज, आपको सन्देह करने की आवश्यकता नहीं है। किसी भी हालत में यह घोड़ा नीचे नहीं गिरेगा।"

राजकुमार राजा को मनाता ही रहा। पिता को उस पर लाड़ था। इसलिए वह उसकी बात ठुकरा न सका। वह मान गया। उसने राजकुमार से कहा—"देखो, बेटा, ज्यादह तेज़ी से न जाना। एक ही कील ढ़ीली करना।"

राजकुमार मान गया। लकड़ी के घोड़े पर सवार होकर उसने पहिली कील

ढीली की। सचमुच घोड़ा आकाश में उड़ गया। राजकुमार ने नीचे पहाड़, नदी, पेड़, मनुष्य और नगरों को देखा। वह बड़ा खुश हुआ। उस खुशी में उसने छब्बीसों कीलें ढीली कर दीं। लकड़ी का घोड़ा बड़ी तेज़ी से दौड़ने लगा।

इस तरह आकाश में बहुत देर तक विचरण करने के बाद राजकुमार को भूख लगी। सौभाग्य से उसको पास ही एक नगर दिखाई दिया। उसने घोड़े की सब कीलें कस दीं। घोड़े की चाल कम हो गई। वह पक्षी की तरह मँड़राता ज़मीन पर उतरा। उसने पेट भर के खाना खाया। एक धर्मशाला में रहने का प्रबन्ध किया।

उस दिन की यात्रा पर वह बहुत खुश था। क्योंकि वह थोड़ी देर में ही लकड़ी के घोड़े की सहायता से कहीं दूर एक ऐसे नगर आ गया था, जो उसने कभी न देखा था। उस दिन रात को सोकर वह अगले दिन नगर देखने गया।

दो गलियों को पार करने के बाद एक चौक आया। वहाँ लोग खड़े होकर आकाश की ओर देख रहे थे। आकाश में कुछ नहीं था। "ये क्यों इस तरह देख

रहे हैं।" वह उनके पास गया। एक से पूछा—"तुम सब आकाश में क्यों यों देख रहे हो?"

उस आदमी ने राजकुमार की ओर देखकर सोचा कि वह कोई परदेशी था। उसने यों बताया—"हमारे राजा की एक लड़की है। वह बहुत ही सुन्दर है। दुनियाँ में उसके बराबर सुन्दर कोई न होगी। उस लड़की पर राजा को भी बहुत लाड़ प्यार है। उसको दूसरों का अपनी लड़की को देखना भी पसन्द न था। जब तक वह राजमहल में रही, उसे क्षण भर भी चैन न रही। इसलिए उसने मेघों में....आकाश में उसके लिए एक महल बनवाया और उसमें उसे अकेला रख दिया। रोज़ नित्यकृत्य से निवृत्त हो, वह उसे देखकर आता रहता है। आज उसको गये हुए कुछ देर हो गई है। हम उसके आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

राजकुमार को यह सब एक कहानी-सी लगी। "मेघों में महल कैसे बनाया जा सकता है?" उसने पूछा।

"उसे एक सिद्ध ने अपनी महिमा से बनवाया था। केवल राजा ही वहाँ जा सकता है।" उस व्यक्ति ने कहा।

दिन भर वह राजकुमार इसी विचित्र बात पर सोचता रहा। यह जानने के लिए कि वह आकाश महल है क्या चीज़, रात काफ़ी अन्धेरा हो जाने के बाद लकड़ी के घोड़े पर सवार होकर आकाश में उड़ा।

थोड़ी दूर उड़ने के बाद उसे सचमुच आकाश में महल दिखाई दिया। वह अपने घोड़े को महल के द्वार पर ले गया। उसे रोका, उतरकर वह महल के अन्दर गया।

किसी के आने का आहट सुनकर राजकुमारी ने सोचा कि उसका पिता आ रहा था। मगर किसी नये व्यक्ति को देखकर और यह जानकर कि वह उसका पिता न था, उसने अनुमान किया कि वह कोई देवता होगा। क्योंकि मामूली आदमी उस महल में तो आ नहीं सकते थे। उसको आसन देने के लिए वह अपने आसन से उठी।

राजकुमार अपनी ही आँखों पर विश्वास नहीं कर सका। क्योंकि राजकुमारी सचमुच ही बहुत सुन्दर थी। उसमें प्रेम तरंगित होने लगा। "अरे यह मेरी स्त्री हो गई तो मुझे और क्या चाहिए!"

राजकुमारी भी राजकुमार को चाहने लगी। "क्योंकि मेरे पिता ने मुझे यहाँ बन्द कर रखा है, इसलिए मैं किसी को देख नहीं पाती हूँ। अगर ऐसा युवक मुझ से प्रेम करने लगे तो मुझे और क्या चाहिए।" उसने मन ही मन सोचा।

दोनों ने एक दूसरे के मन को आसानी से समझ लिया और गान्धर्व विवाह भी कर लिया। राजकुमार ने वह रात उसी महल में बिताई और सवेरा होते ही वह अपनी लकड़ी के घोड़े पर सवार होकर धर्मशाला में चला आया।

उसके चले जाने के थोड़ी देर बाद राजा हमेशा की तरह आया। अन्दर पैर रखते ही, उसे सन्देह हुआ कि कोई और भी वहाँ आया था और राजकुमारी भी रोज़ की अपेक्षा अधिक प्रफुल्ल लगती थी।

यह देख राजा को बड़ा दुःख हुआ। उसने लड़की से कुछ नहीं कहा। अपने महल में जाकर सोचने लगा—"आकाश महल में कौन आ सकता है!"

राजा को चिन्तित देख मन्त्रियों ने चिन्ता का कारण पूछा। उसने उनसे अपने सन्देह के बारे में बता कर कहा—"मेरे सिवाय वहाँ और कोई तो जा नहीं सकता है! वहाँ आनेवाला कौन है? उसको कैसे पकड़ा जा सकता है, आप लोग सोचकर तो बतायें।"

"हमारे पास चार महायोद्धा हैं। आप उनको आकाश में ले जाइये और चारों दिशाओं में उनको पहरे पर नियुक्त कीजिये। रात के समय यदि कोई आयेगा, तो वे उसको अवश्य पकड़ लेंगे।" मन्त्रियों ने कहा।

"वाह, यह बात तो बहुत ठीक है।" राजा ने कहा। वह उस दिन शाम को उन चार महायोद्धाओं को साथ ले गया। उनको चार कोनों में पहरा देने के लिए कहकर वह वापिस चला आया।

परन्तु यह बात कुछ बनी नहीं। वे महायोद्धा पहरा देते देते सो गये।

राजकुमार उस दिन रात को आकाश महल में आ ही गया। उसने सारी रात राजकुमारी के साथ बितायी और सवेरे सवेरे होते ही चला गया। [अभी और है]

ताना बार

कहीं दूर किसी एक छोटे गाँव में एक आदमी रहा करता था। वह खास धनी तो नहीं था, पर उसके पास काफ़ी कुछ था, कोई कमी न थी। किन्तु वह बड़ा कंजूस था। वह किसी को न कुछ देता था, न खुद ही खाता था।

उसकी पत्नी भी उसके जैसी थी, हर चीज़ बड़ी कंजूसी से बरतती। रसोई करते समय एक चीज़ व्यर्थ नहीं जाने देती, जो कुछ १काती उसमें से तनिक भी न छोड़ा जाता।

उनके एक छोटा लड़का था। उसके बारे में पिता हमेशा कहा करता—"जब तक इसकी मूँछे नहीं आ जातीं, तब तक मुझे चैन न मिलेगी।"

एक दिन मूसलाधार बारिश हो रही थी कि किसी ने उसके घर का किवाड़ खटखटाया। उस आदमी ने जाकर किवाड़ खोला। बाहर खड़ा व्यक्ति चुपचाप अन्दर आ गया—"बाप रे बाप, क्या बारिश है। बहुत दूर से चला आ रहा हूँ और अभी बहुत दूर जाना है। आज मुझे यहीं रहना होगा।"

"अरे सारा घर गीला कर रहे हो।" घरवाली स्त्री ने कहा।

"तुम दोनों को देखकर प्रतीत होता है कि तुम अतिथि सत्कार करनेवाले हो। अच्छा हुआ कि मैंने अच्छी जगह पैर रखा। आज रात जो कुछ आप खायें उसमें थोड़ा मुझे भी दीजिये। रात भर यह सोऊँगा, सवेरा होते ही मैं अपने रास्ते पर निकल जाऊँगा।" अतिथि ने कहा।

यद्यपि उन्होंने कुछ न किया था, परन्तु उसको इस तरह बातें करता देख, जैसे वे

रश्मिकुमार

उसका सत्कार कर रहे हों, पति-पत्नी को आश्चर्य हुआ। किन्तु वे यह नहीं कह सके—"यहाँ नहीं रह सकते, कहीं और जाओ।"

अतिथि भी उनके मन की बात न जान सका। वह भी इस तरह व्यवहार करने लगा जैसे वह उसका अपना घर हो। उसने अपने थैले में से सूखे कपड़े निकाले और गीले कपड़े घर में सुखा दिये। फिर वह एक पलंग पर बैठ गया।

घरवाली उस अतिथि के भोजन के विषय में बहुत चिन्तित हुई। उसको जो कुछ उसके लिए बनाना था, बड़े नाप तोलकर बनाया।

रसोई होते ही उसने अपने पति और अतिथि को भोजन के लिए बुलाया। जो रोज बनाया जाता था, उसने वह पति को परोसा और जो अतिथि के लिए बनाया था, उसे अतिथि को दिया। परन्तु उसने देखा, जैसे किसी ने जादू किया हो, अतिथि उसके पति का भोजन कर रहा था और पति अतिथि का भोजन निगल नहीं पा रहा था।

उसी तरह जो दही पति के लिए रखी थी, वह अतिथि के पत्तल पर थी और जो दूध रखा था वह भी अतिथि के लोटे में मौजूद था।

अतिथि ने पेट-भर खाकर कहा—"अच्छा भोजन है, अच्छा साग था, बड़ी बढ़िया दही थी। अमृत-सा दूध। आखिर हुआ क्या था घरवाला नहीं जान सका। उसकी पत्नी ने उसका भोजन कभी किसी अतिथि को नहीं परोसा था। आज अवश्य कोई कारण रहा होगा, तभी उसने ऐसा किया।

और उसकी पत्नी के आश्चर्य की तो सीमा ही न थी। उसने बहुत देख-भाल

कर भोजन परोसा था। जब वह स्वयं भोजन के लिए बैठी, तो उसके लिए कुछ न बचा था—सारे बर्तन खाली थे।

अतिथि ने पेट सहलाते हुए उस दम्पति से कहा—"मुझे मामूली आदमी न समझ कर कोई देवता मान लो। यदि मैं तुम्हारे आतिथ्य पर सन्तुष्ट होकर तीन वर देना चाहूँ, तो तुम क्या माँगोगे? एक के बाद एक माँगना।"

घरवाले को लगा कि वह उनका मज़ाक कर रहा था, कोई पागल होगा। उसने मामूली तौर पर कहा—"मेरी खास कोई इच्छा नहीं है। हमारे लड़के के जितनी जल्दी मूँछे आयेंगी, उतना ही मैं खुश होऊँगा।"

"क्यों, तुम्हारी क्या इच्छा है?" उसने घरवाली से पूछा।

क्योंकि वह नादान थी या इसलिए कि वह स्त्री थी, उसने अच्छा वर माँगना चाहा, उसने अतिथि से कहा—"जी, मेरी इच्छा, हाँ....जी मेरी इच्छा है कि जो कुछ मैं पकड़ूँ, वह हाथ भर बढ़ जाये।"

इस तरह चाहने का मतलब यह था कि जो कोई तरकारी वह हाथ में ले, वह हाथ भर बढ़ जाये और दो वक्त के लिए काम आये। उसी तरह यदि वह सोने का तार पकड़े, तो वह बढ़कर एक सीख बन जाये और उसका घर सोने से भर जाये।

पति-पत्नी की इच्छाओं को सुनकर अतिथि ने कहा—"जाओ मैं तुम्हारी इच्छा पूरी कर देता हूँ। मैं सचमुच देवता हूँ।"

अतिथि का यह कहना था कि पालने में लेटा लड़का ज़ोर से रोया। जब उसका पिता पालने के पास गया, तो देखता

है कि उसके ओंठों पर बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। ठीक उसी समय उसकी पत्नी ने छींका और हाथ से नाक पूँछी। तुरत नाक इतनी बढ़ गई कि वह ज़मीन छूने लगी।

पति-पत्नी दोनों चिल्लाने लगे।

"अरे, विचारे गोदी के बच्चे की इतनी बड़ी-बड़ी मूँछें। वह बुरी तरह रो रहा है।" घरवाले ने कहा।

"अरे, यह नाक भी क्या है! इसे लेकर, मैं अपना मुँह कैसे दिखाऊँगी!" उसकी पत्नी ने कहा।

दोनों की अक्ल जाती रही—"यह सब इस दुष्ट ने ही किया है।" घरवाले ने अतिथि की ओर अंगुली दिखाकर कहा।

"इसमें मेरी कोई गलती नहीं है। मैं आतिथ्य से सन्तुष्ट हूँ। वर माँगते समय तुम्हें सोचना चाहिए था। फिर भी, तुम्हारा एक वर अभी बाकी है। कम से कम इस बार ज़रा सोचकर माँगना।" अतिथि ने कहा।

उसमें कोई परिवर्तन आ गया, वह साधारण मनुष्य की तरह न था। उसका सारा शरीर चमक रहा था। उसके शरीर के कपड़े भी चम-चमा रहे थे।

पति-पत्नी ने उसको साष्टांग करके कहा—"आप अतिथि होकर आये और हम आपका उचित सत्कार न कर पाये। हमें क्षमा करें। हमें कोई वर न दो, जो दो वर हमें दिये हैं, उसे रद्द कर दो।"

जब वे उठे, तो अतिथि न था। परन्तु बच्चे ने रोना बन्द कर दिया था। उसकी मूँछे चली गई थीं। घरवाली की नाक भी ठीक हो गई थी।

इस घटना के बाद उन्होंने अपना लोभ छोड़ दिया। वे अतिथियों का सत्कार करने लगे।

किसी जमाने में जर्मनी में एक बड़ा योद्धा रहा करता था। होने को तो वह योद्धा था, पर बड़ा चोर भी था। उसकी चोरियाँ साहसपूर्ण होतीं।

सड़कों पर जानेवाले व्यापारी जत्थों को लूटकर उसने काफ़ी धन जमा किया।

राजा के पास उसके बारे में बहुत-सी शिकायतें पहुँचीं। व्यापारी आत्मरक्षा का काफ़ी प्रबन्ध करके यात्रा पर निकला करते। परन्तु डाकू और उसके साथी बिजली की तरह आते और अपना काम करके बिजली की तरह चले जाते।

इसी कारण राज सैनिकों ने कई बार उसको पकड़ने का प्रयत्न तो किया, पर कभी वे अपने प्रयत्नों में सफल न हो पाये।

होते होते सब को इस डाकू पर गुस्सा-सा आने लगा। जो पहिले उसकी वीरता की प्रशंसा किया करते थे, वे भी उससे चिढ़ने लगे, उसकी मौत चाहने लगे। अन्त में उसके शत्रु ही शत्रु रह गये, मित्र कोई न रहा।

अगर इस डाकू का कोई मित्र था, तो वह उसका घोड़ा ही था। वह सचमुच असाधारण था। वह, लगता था अपने मालिक के आशय को भी समझ लेता था, अगर डाकू नहीं पकड़ा जाता था, तो इसका मुख्य कारण वह घोड़ा ही था।

आखिर उस डाकू के दिन भी आये। राज सैनिक उसको उसके घोड़े के साथ पकड़कर राजा के किले में ले गये।

राजा ने उसे देखकर कहा—"यह बहुत दिनों से जनता को सता रहा है। देश में इसने अराजकता पैदा कर दी। इसलिए मैं इसको मृत्यु का दण्ड देता हूँ।

राजेन्द्र

कहा—"मेरी मौत देखने इतने लोग जमा हुए हैं, पर आप में मेरा हित चाहनेवाला एक भी नहीं है।" यह कहकर वह ज़ोर से हँसा।

जनता में तो कोई हलचल नहीं हुई। परन्तु अस्तबल में मालिक का चिल्लाना सुन घोड़ा हिनहिनाया। उसका हिनहिनाना सुन डाकू का चेहरा उतर आया। वह अचम्भे में पड़ गया।

जो तब तक घमंडी-सा लग रहा था, यकायक नरमा गया। राजा के पास आकर उसने कहा—"महाराज! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। मेरी आखिरी इच्छा पूरी कीजिये। मुझे एक बार अपने घोड़े पर सवार होने दीजिये। उसके बाद मैं निश्चिन्त हो मर जाऊँगा। मेरी यह इच्छा पूरी कीजिये।"

उसको निहत्था करके, आज काली कोठरी में रखो और कल सवेरे सब के सामने उसको फाँसी पर चढ़ा दो।"

डाकू को काली कोठरी में रखा गया। उसके घोड़े को राजा के अस्तबल में बाँध दिया गया। किले के अन्दर राजमहल के सामने के मैदान में फाँसी का खम्भा रखा गया।

राज सैनिक डाकू को, पीठ पीछे हाथ बाँधकर, उस खम्भे के पास लाये। डाकू बड़ा बहादुर था, उसने बहादुरी से मर जाना चाहा। इसलिए उसने गला फाड़कर

राजा ने एक बार चारों ओर देखा, डाकू को खाली जगह में घूमने देने से कुछ न जाता था। मैदान के परे किले की ऊँची दीवारें थीं। दीवार मोटी भी बहुत थी, फिर उसके बाद खन्दक थी। किले के फाटक पर बहुत से सैनिक पहरा दे रहे थे।

इसलिए उसने सैनिकों से कहा—"तुम जाकर इसका घोड़ा ले आओ। इसके हाथ की जँजीरें तोड़ दो।" कई जाकर घोड़ा लाये। कई ने उसकी जँजीरें खोलीं।

डाकू ने घोड़े पर सवार होकर एक बार धीमे-धीमे एक चक्कर लगाया। घोड़े को और घोड़े के सवार को देखकर लोग खुश हुए। उन्होंने कई बार ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ भी पीटीं।

दूसरे चक्कर में डाकू का जोश बढ़ा। उसने घोड़े को धीमे धीमे दौड़ाया। लोगों की खुशी और बढ़ी। तीसरे चक्कर में उसने घोड़े को तेजी से दौड़ाया। जनता आश्चर्य से खूब शोर करने लगी।

जब तीसरी बार वह चक्कर काट रहा था, तो डाकू को एक बात सूझी। राजा के नौकरों के हाथ क्यों फांसी पर चढ़ाया जाऊँ? साहसिक कार्य करके मैंने जिन्दगी बितायी है, साहसिक ढंग से ही मरूँगा। मेरे मरने के बाद मेरा घोड़ा किसी और का हो, इससे तो अच्छा यही है कि मैं और मेरा घोड़ा एक साथ मरें। यही

अच्छा मौका है। मुझे आगे पीछे नहीं देखना चाहिए।

यह सोच डाकू ने घोड़े की चाल और तेज़ की उसको किले की दीवारों की ओर दौड़ाया। उसने अपनी आँखें मूँद लीं।

जनता का शोर उसे सुनाई दिया। घोड़े को बाण की तरह आता देख, लोग तितर बितर होकर भागने लगे। कुहराम मच गया। कई घबराये भी।

पर इसके बाद कुछ न हुआ। न वह, न घोड़ा ही दीवार से टकराया। उसे एक क्षण ऐसा लगा जैसे समय ही रुक गया हो। जैसे मृत्यु ने उसे बहकाया हो। हालत ऐसी कि वह कुछ सोच न भी न पाता।

अकस्मात् घोड़ा रुक-सा गया, वह नहीं मरा।

जब डाकू ने आँखें खोलीं, तो उसने देखा कि वह किले की दीवार पर था। वह असाधारण घोड़ा किले से न टकराकर सीधे दीवार पर चढ़ गया। घोड़ा देख वह फूला न समाता था।

डाकू को लगा, जैसे वह पुनर्जीवित हो उठा हो।

उसने सपने में भी न सोचा था कि उसका घोड़ा इतना बलवान था। जो घोड़ा किले की दीवार पर कूद सकता है, क्या उसके लिये दीवार फांद जाना कोई बड़ी बात है? डाकू ने अपने घोड़े को किले से बाहर कुदवाया।

एक छलांग में घोड़ा अपने मालिक को लेकर खन्दक पार कर गया।

जब राज-सैनिक भागे-भागे गये, तो न वह डाकू था, न उसका घोड़ा ही।

फिर पूर्णिमा आई। चान्दनी में आराम कुर्सी पर बैठकर सुंघनी निकालते हुए बाबा यों गुन गुनाने लगा :—

> "मानभंगः परकृतो
> मानिनां मंगलावहः ;
> अनन्तो मानभंगेन
> पाण्डित्यं परमं गतः ।"

बाबा अभी सुंघनी नाक में डाल भी न पाया था कि बच्चे पूछने लगे—"इसका अर्थ क्या है बाबा? यह भी क्या कोई कहानी है? बाबा एक कहानी सुनाओ।" वे यों शोर करने लगे। सुंघनी की शीशी अंटी में रखते हुए बाबा ने कहा—"देखो, मान-शानवाले लोग होते हैं न! ऐसे लोगों का मान भंग होने पर कभी-कभी उनका कल्याण भी होता है। यह दिखाने के लिए एक कहानी सुनाता हूँ, सुनो।"

"किसी ज़माने में, अनन्त नाम का व्यक्ति अपमानित होने पर बड़ा पंडित नहीं हुआ था क्या?"

"अनन्त कौन था, बाबा? उसका क्या अपमान हुआ?" बच्चों ने फिर ज़ोर ज़ोर से पूछा।

"बिना शोर किये कहानी सुनो, सब तुम ही जान जाओगे।" बाबा ने फिर यों कहानी सुनानी शुरु की।

चोल देश में पंडितों का एक परिवार था। उसमें केदार भट्ट, महानन्दि भट्ट, अनन्त भट्ट नाम के तीन भाई थे। तीनों गृहस्थी कर रहे थे।

अनन्त भट्ट के भाई और उनकी पत्नियाँ तो संस्कृत में सम्भाषण कर ही लेती थीं। उसकी पत्नी भी संस्कृत में खूब बोलती। एक अनन्त भट्ट ही संस्कृत बिल्कुल न

जानता था। वह निरा मूर्ख था, आलसी भी। इसलिए व्याकरण तो वह पढ़ता नहीं, संस्कृत के शब्दों का गलत-शलत ऊँटपटाँग उपयोग किया करता।

मालूम है, एक दिन क्या हुआ? सब भोजन कर रहे थे। अनन्त ने दही मँगाने के लिए पत्नी से कहा—"दधिमानय" सब जोर से हँसे।

जानते हो क्यों? मालूम है, दही लाने के लिए क्या कहना होता है? "दधि आनय" नहीं तो "दध्यानय" परन्तु अनन्त यह न जानता था।

तब जानते हो अनन्त की पत्नी ने क्या कहा? वह पंडित जो थी, उसे यह बड़ा बुरा लगा कि सब उसके पति पर हँसे थे। "तुम सब क्यों हँस रहे हो? उन्होंने ठीक तो कहा है। "दधिमानय" का मतलब है, दधि मा आनय—यानि दही नहीं, लस्सी लाओ—यह उनका मतलब है।" उसने पति को लस्सी लाकर दी।

कहावत है कि बहु इसलिए नहीं रोई कि सास ने मारा था, मगर इसलिए कि साथ की बहुयें हँसी थीं। इसी तरह अनन्त के अभिमान को चोट लगी—"मुझे मेरी पत्नी ठीक करती है!"

इस अपमान के कारण एक दिन रात को बिना किसी को कहे वह काशी चला गया। वहाँ उसने बड़े बड़े पंडितों के पास सकल शास्त्र पढ़े। कितने ही देशों में वह घूमा। कितने ही राजपंडितों को हरा कर कंकण, उपाधि, पारितोषिक, उपहार आदि लेकर घर वापिस आया।

"देखा, अनन्त भट्ट में अभिमान था, तभी तो वह अपमानित हुआ। मानभंग होने के कारण ही तो वह महान पंडित बना।" बाबा ने कहा।

हमारे देश के आश्चर्यः

चार मिनार

आन्ध्र देश की राजधानी हैदराबाद, भारत का पाँचवाँ विशाल नगर है। इसका निर्माण करीब ३७० वर्ष पूर्व हुआ। इसका निर्माता, गोलकोन्डा का नवाब मोहम्मद कुलीकुतब शा था। कहते हैं उसको अपनी पत्नियों में भाग्यमति नाम की पत्नी सब से अधिक प्रिय थी। उसी के नाम पर उसने इस नगर का नाम भाग्य नगर रखा। यह, जब से निज़ामों का शासन शुरु हुआ, तब से उनकी राजधानी रही। और यह निरन्तर वृद्धि करता गया।

हैदराबाद के बीच में चार मिनार है। चार मिनार का अर्थ चार स्तम्भ है। ये स्तम्भ १८० फीट ऊँचे हैं। महम्मद कुली कुतुब शा के ज़माने में यहाँ प्लेग आई। जब उसका प्रकोप समाप्त हो गया तब १५९१ में उसने यह सुन्दर इमारत बनवाई। यह भी हमारे देश के भवनों में विख्यात है।
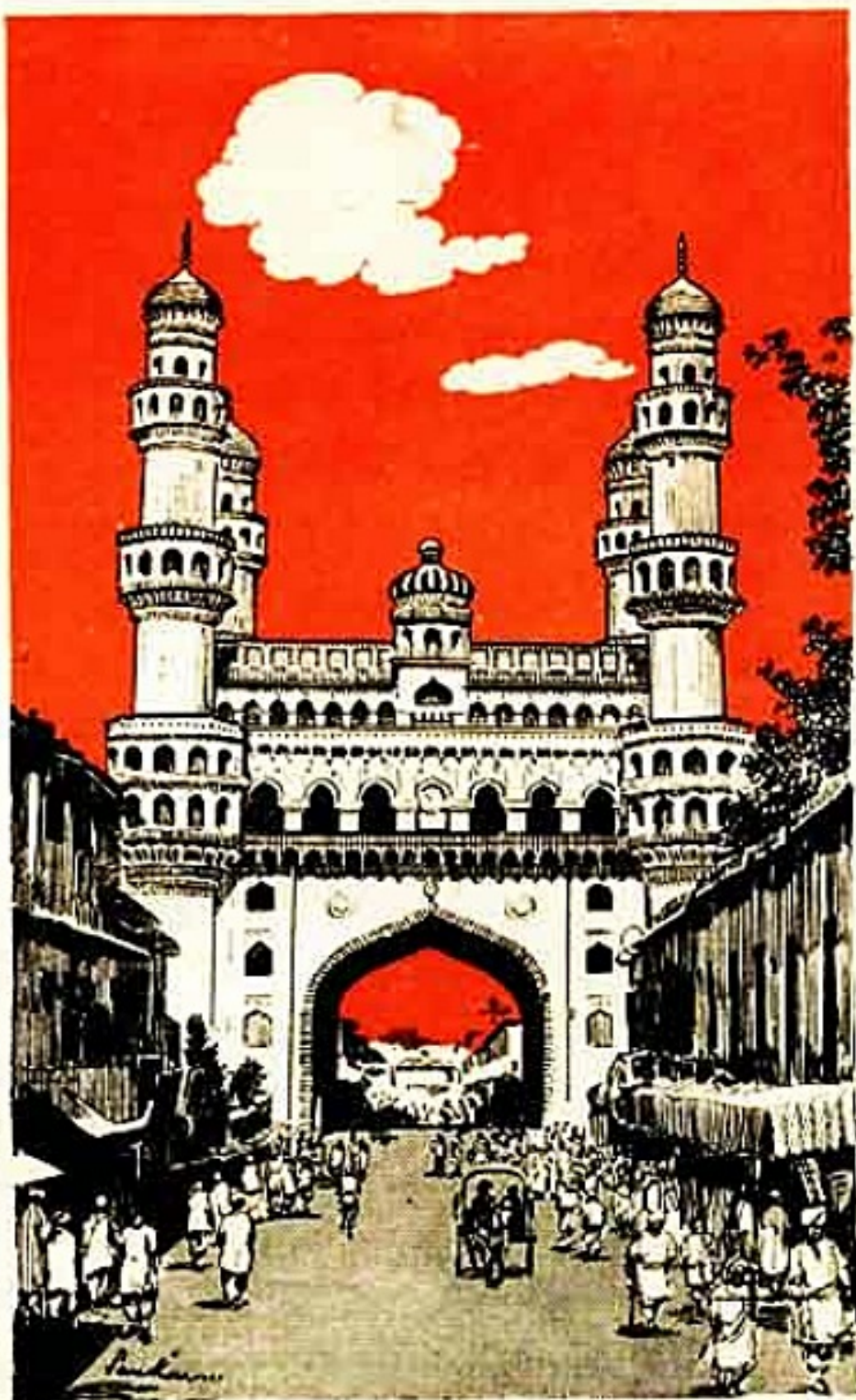
शर्मिन्दा

चीन में अवन्ती नाम के विदूषक के घर एक दिन रात को एक चोर आया। यह देख अवन्ती एक सन्दूक में घुसकर छुप गया।

चोर सारा घर देखकर आखिर सन्दूक के पास आया। सन्दूक को जब खोला तो चोर ने अवन्ती को छुपा पाया।

"अरे यह क्या! सन्दूक में कौन छुपा हुआ है?" चोर ने पूछा। वह हैरान था। उसे कुछ समझ में न आ रहा था।

"क्या करूँ! यह देख कि इस घर में तुम्हारे काम की कोई चीज़ नहीं है, मैं इतना शर्मिन्दा हुआ कि सोचा मैं तुम्हारा मुँह न देख पाऊँगा। इसलिए छुपना पड़ा।" अवन्ती ने कहा।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

अप्रैल १९६१ :: पारितोषिक १०)

कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें।

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्नलिखित पते पर ता. ७, फ़रवरी '६१ के अन्दर भेजनी चाहिए।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता,
चन्दामामा प्रकाशन,
वडपलनी, मद्रास - २६.

फ़रवरी – प्रतियोगिता – फल

फ़रवरी के फ़ोटो के लिए निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं। इनके प्रेषक को १० रु. का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो : **दुनिया मेरे लिए तमाशा!**

दूसरा फ़ोटो : **मैं दुनिया के लिए तमाशा!!**

प्रेषक : **श्री चन्दनकुमार,**

C/o श्री त्रिवेणीप्रसाद, पो॰ विक्रमगंज, जि. शाहाबाद (बिहार)

१. टीकाराय, मंड़ला

क्या चित्रा और शंकर आपके "चन्दामामा" के परमनेन्ट चित्रकार हैं?

जी हाँ।

२. कुलदीप कुम्हार, राँची

चन्दामामा सबसे पहले किस भाषा में प्रकाशित हुआ था?

तेलुगु में।

चन्दामामा के प्रकाशक कौन हैं?

श्री बी. वेणुगोपाल रेड्डी

३. शीलनिधि यादव, कलकत्ता

आप "चन्दामामा" में गीत, कविता प्रकाशित क्यों नहीं करते?

करते हैं। परन्तु "चन्दामामा" विशेषतः कथा प्रधान मासिक है।

४. हरीदास, हरिजीभाई, भंडारा

आप "चन्दामामा" को साप्ताहिक क्यों नहीं करते?

यह प्रश्न बहुत से पाठक पूछते हैं। सम्भव है कि किसी दिन यह सप्ताहिक बन सके, मगर फिलहाल ऐसी कोई योजना नहीं है।

५. गुलशनराय, नई दिल्ली

आप किसी समय अंग्रेजी में "चन्दामामा" प्रकाशित करते थे, क्या आपके पास उसकी कुछ पुरानी प्रतियाँ हैं?

प्रकाशित अवश्य करते थे। अब पुरानी प्रतियाँ भी नहीं रही हैं।

६. भानुप्रकाश सेठिया, कानपुर

आप "चन्दामामा" में किसी प्रकार की प्रतियोगिता क्यों नहीं देते?

एक तो देते हैं। फोटो परिचयोक्ति। स्थान और सुविधायें रहीं तो और भी देंगे।

७. नानकचन्द दीवान, ग्वालियर

आपने "अहिंसा ज्योति" नामक युद्ध चरित्र छापा था, क्या उसकी किताब नहीं छापी?

अभी तक तो नहीं।

आप अंग्रेजी में चन्दामामा क्यों नहीं छपवाते हैं?

जब छपा था तो इसकी लोकप्रियता उतनी उत्साहवर्धक न थी।

८. भवेर गोलप्पा, अबोहर

आप "चन्दामामा" में वैज्ञानिक बातों के बारे में एक स्तम्भ चालू क्यों नहीं करते?

"चन्दामामा" जैसा कि नाम से भी अनुमान किया जा सकता है, कहानियों पर ही ज़ोर देता है।

९. नरेन्द्र गेमावत, जोधपुर

आप प्रश्न भेजने की तिथि "चन्दामामा" में क्यों नहीं छापते?

आवश्यक नहीं है, हम ऐसे प्रश्नों के भी उत्तर देते हैं, जो बहुत पहिले भेजे गये हैं। स्थान कम है और प्रश्न अधिक। यह अपरिहार्य है।

क्या आप "चन्दामामा" उर्दू में छापते हैं?

नहीं।

१०. रामसिंह, कलकत्ता-२८

चीन की जो कहानियाँ आप छापते हैं। क्या वह सब सत्य हैं?

वे कहानियाँ हैं। और कहानियाँ सच नहीं होतीं और सच हो भी सकती हैं।

११. एम. बलवन्तसिंह, हैदराबाद

क्या मैं प्रश्नोत्तर के पते पर ही कहानी लिखकर भेज सकता हूँ?

जी नहीं, यह न कीजिए।

१२. बसानी गोपालकृष्ण, पलवल

पिछले साल आपने चन्दामामा में 'पंचतन्त्र' के कथासार को कविता के रूप में छापा था। क्या उसकी पुस्तक मिल सकती है?

पुस्तकाकार में नहीं प्रकाशित हुई है, इसलिए नहीं मिल सकती।

चित्र-कथा

एक रोज दास और वास से गड़रिये लड़के ने पूछा—"कभी चीता देखा है? उन्होंने बताया कि नहीं। वह हँसा। उसने कहा कि रात एक चीता आया था मैंने उसे पकड़ लिया। तुम उसे पेड़ों के पास देख सकते हो। दास और वास ने चीता देखने की सोची। परन्तु इस बीच "टाइगर" ने चीते का पैर पकड़ लिया। वह चें चें कहता भाग निकला। गड़रिये ने एक मेंढ़े पर काले दागोंवाला कपड़ा डालकर उनको डराने की सोची थी। मगर अब उसे ही मेंढ़े के पीछे भागना पड़ा।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press Private Ltd., and Published by B. VENUGOPAL REDDI for Sarada Binding Works,

हम प्रत्येक व्यक्ति और व्यापारिक संस्था को आश्वासन देना चाहते हैं कि कलात्मक सृजन, स्पष्टतम कार्य-निपुणता, आकर्षक मुद्रण और शीघ्र वितरण हमारा ध्येय है।
★
हिन्दी, अंग्रेजी, तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मराठी, गुजराती, मलयालम और उड़िया में छपाई का कार्य लिया जाता है।
★
दि बी. एन. के. प्रेस
(प्राइवेट) लिमिटेड
चन्दामामा बिल्डिंग्स :: मद्रास-२६
टेलिफ़ोन :
८८८५१-४ लाइन्स

आपको जब बहुत जरूरी काम होता है, तभी तो आप तार देते हैं। फिर आप पता पूरा क्यों नहीं लिखते ताकि आपका तार जल्दी पहुंचे।

पता अधूरा देने से हो सकता है उसमें देर लगजाए।

पर एक तरीका ऐसा भी है, जिससे देरी की संभावना न रहे और पैसे भी कम खर्च हों। यदि आप अपना तार टेलीफोन के पते पर भेजें तो ऐसा हो सकता है। इसके लिए आपको पता इस प्रकार लिखना होगा; जैसे :— 'बनर्जी, टे.फो. ३१६७०, नई दिल्ली'। ज्योंही यह तार नई दिल्ली के तारघर में पहुंचेगा, त्योंही वह उस टेलीफोन नम्बर पर पढ़ कर सुना दिया जायेगा।

पतेमें 'टे.फो. ३१६७०' एक ही शब्द गिना जाता है।

हमें उत्तम सेवा का अवसर दीजिये

डाक-तार विभाग

हर्क्युलिस ही इसके पास अपनी सबसे अनमोल चीज है

"कहीं **हर्क्युलिस** में ताला लगाना तो नहीं भूल गया, जरा देखूँ तो"

साइकिल खरीदने के लिए शायद आपको घर के दूसरे खर्चों में कुछ-कुछ बचाना पड़ता है जैसे बस का किराया, नाश्ते का खर्च, साड़ियों और जेवर आदि।

इसलिए आप सबसे अच्छी साइकिल ही लेना पसन्द करेंगे। आप बेफिक्र होकर **हर्क्युलिस** ही खरीदिए। दुनिया के १३४ देशों में लोग यही साइकिल सबसे अधिक चाहते हैं। इतनी खूबसूरत बनावट की और पानी की तरह चलनेवाली साइकिल आपको दूसरी नहीं मिलेगी।

आधुनिक साज-सामानों से लैस भारत की सबसे बड़ी फैक्टरी में **हर्क्युलिस** साइकिल का हर कल-पुर्जा निर्धारित तरीके से तैयार किया जाता है। एक विशेष "स्प्रे-बॉनडराइ-जिंग" प्रक्रिया से इसमें जंग लगने का डर नहीं रहता। इसपर तीन बार इनामेल चढ़ाया जाता है जिससे इसकी नई जैसी चमक-दमक बहुत दिनों तक बनी रहे।

आपकी साइकिल आपकी पूंजी है और **हर्क्युलिस** से बेहतर साइकिल भला कहाँ मिलेगी?

हर्क्युलिस

केवल साइकिल नहीं, सारे जीवन की साथी है

प्रस्तुतकारक: टी. आई. साइकिल्स आफ इंडिया, अम्बत्तूर—मद्रास के पास